परमेश्वर क्या चाहते हैं

माइकल एस हाईसर

लेखक ने लिखी हुई दूसरी पुस्तकें

अलौकिक – अद्रश्य जगत के बारे में बाइबल क्या सिखाता हे और क्यों ये महत्वपूर्ण हे

The Unseen Realm: Recovering the Supernatural Worldview of the Bible

Angels: What the Bible Really Teaches About God's Heavenly Host

Demons: What the Bible Really Teaches About the Powers of Darkness

I Dare You Not to Bore Me with the Bible

The Bible Unfiltered: Approaching Scripture On Its Own Terms

Reversing Hermon: Enoch, the Watchers, and the Forgotten Mission of Jesus Christ

Brief Insights on Mastering Bible Study (The 60-Second Scholar series)

Brief Insights on Mastering the Bible (The 60-Second Scholar series)

Brief Insights on Mastering Bible Doctrine (The 60-Second Scholar series)

The Façade (fiction)

The Portent (fiction)

समर्पण

जो लोग यीशु के ऊपर विश्वास करने की, या तो मसीही जीवन की यात्रा की शुरुआत कर रहे हें, और जिन्होंने उस यात्रा की शुरुआत तो की हे, पर उनको ऐसा लगता हे की वे अभी तक वही स्थान पर हे, ऐसे हरेक लोगों को समर्पित ।

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

परिचय

भाग 1 : मूल बात

अध्याय 1 : परमेश्वर एक परिवार की इच्छा रखते थे

अध्याय 2 : परमेश्वर अब भी एक परिवार की इच्छा रखते थे

अध्याय 3 : परमेश्वर के परिवार के द्वारा उनके साथ विश्वासघात किया गया

अध्याय 4 : परमेश्वर उनके मानवीय परिवार के साथ जुड़े

अध्याय 5 : परमेश्वर अपने परिवार को आगे बढ़ाते हे

अध्याय 6 : परमेश्वर सदा अपने परिवार के साथ है

सारांश और पूर्वावलोकन

भाग 2 : सुसमाचार

अध्याय 7 : सुसमाचार क्या हे?

भाग 3 : यीशु का अनुसरण करना

अध्याय 8 : शिष्यता क्या हे?

अध्याय 9 : चेले क्या करते हे?

महत्व के नाम और शब्द (शब्दावली)

अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश

प्रस्तावना – कृपया इस बात को मत छोड़ो

में आशा रखता हूँ की इस बात ने आपका ध्यान खींचा हे। मुझे पता हे की प्रस्तावना का पठन करना तो टी.वी पर कोई कार्यक्रम देखने जैसा, या तो ट्राफीक में फँसे हुए हो ऐसा लगता हे। मैं ऐसा वचन नहीं देता हूँ की ये प्रस्तावना रोमांचक होगी, मगर फिर भी ये महत्वपूर्ण हे।

यह पुस्तक तो बाइबल के वास्तविक विषय का परिचय हे – अर्थात परमेश्वर के प्रेम का, और आप कैसे परमेश्वर के साथ अनन्त जीवन प्राप्त करो और दूसरे लोगों को ये दो बातें सीखने में कैसे उपयोगी हो सको उसका परिचय हे। यह बात बहुत सरल लगती हे... पर आप इस विषय से परिचित नहीं हे। यह पुस्तक तो आपने पढे हुए मसिहियत के दूसरे पुस्तकों के जैसा नहीं है। यह पुस्तक में आप ऐसी बातों को पढ़ोगे, जिसे पहले कभी न सुनी हो, और जिन बातों से आप परिचित हे, या तो जिसे आप जानते हैं उसे दूसरे द्रष्टिकोण से बताना चाहता हूँ।

मेरे मन में दो प्रकार के वाचक हे। प्रथम तो ऐसे वाचक जिन्होंने अभी अभी प्रभु यीशु पर विश्वास किया हे। अगर आप ऐसे विश्वासी हैं, तो शायद आप बाइबल के विषय में थोड़े से डरे हुए होंगे। बाइबल में ऐसी कई बातें हे जो विचित्र लगती हैं, और समजने में सरल नहीं लगती। में जानता हूँ की आप कैसा अनुभव कर रहे हो। जब मैं जवान था तब मैंने प्रभु यीशु पर विश्वास किया था। तब में बाइबल के विषय में कुछ भी जानता नहीं था। मैने यीशु, नूह, आदम और हव्वा के विषय में सुना था। मुझे सिर्फ इतना ही ज्ञान था। मुझे तो ऐसा लगता है की जब मैंने सुसमाचार पर विश्वास किया तब ही किसीने मुझे यह पुस्तक दिया होता तो कितना अच्छा होता! उससे मुझे बाइबल की बात समजने में और बाइबल के कुछ महत्व के विचार समझने में सहायता मिली होती। में ऐसा मानता हूँ की यह पुस्तक आपको वो बातें समझने में सहायता प्रदान करेगा।

मेरे मन में दूसरे जो पाठक हैं वो ऐसे लोग हैं जो कुछ समय से यीशु को जानते तो हें, मगर उनको ऐसा लगता है की वे लोग कहीं "फँस" गए है या तो रुक चुके है। आप यीशु पर विश्वास करते हो और कुछ लोग तो लंबे समय से कलिसिया में सहभागी हो रहें है। मगर आपको ऐसा लगता है की यह कार्यो से अलावा और भी कुछ होना ही चाहिए – अब तक आपने बाइबल की बातों के बारेमें जो सुना हे उसमे और भी कुछ है। इतवार की कलिसिया की सभा, मसीही मित्रों के साथ सहभागिता और कलिसिया के जूथों में सहभागी होने से भी ज्यादा कुछ तो होना ही चाहिए। में आपको बताना चाहता हूँ की आपकी भावनाएँ सही है। यह पुस्तक आपको उसमें आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान करेगा।

यह बात शायद विरोधाभासी लगे पर बुध्धिमान लोगों को यह पुस्तक कुछ बुनियादी बातों का परिचय (या तो फिरसे परिचय) करवाता है। आपमें से कुछ लोगों को यह पुस्तक कुछ बातों को नई रीति से सीखने में सहायता प्रदान करेगा। दूसरे कुछ लोगों को और हम को भी कहीं से तो शुरुआत करनी ही पड़ेगी। तो आइए, हम शुरुआत करते हें।

में आशा रखता हूँ की यह पुस्तक उसके पाठकों को मैंने लिखे हुए दूसरे पुस्तकों की और आकर्षित करेगा। आप यह पुस्तक पढ़ लो उसके बाद मेरा पुस्तक "अलौकिक : अद्रश्य जगत के बारे में बाइबल क्या सिखाता है और वो क्यों महत्वपूर्ण है" पढ़ें ऐसी में सिफ़ारिश करता हूँ। अंग्रेजी भाषा के पाठकों के लिए यह पुस्तक Amazon.com पर या तो उसके प्रकाशक Lexham Press द्वारा ऑनलाइन उपलब्ध होगा। कुछ वीडियो भी उपलब्ध है जिसमें मैंने इस पुस्तक के महत्व के विचारों की चर्चा की है। दूसरी भाषाओं के पाठक उस पुस्तक को https://www.miqlat.org/translations-of-supernatural.htm परसे मुफ्त में डाउनलोड कर सकते हें।

में आशा रखता हूँ की मेरा पुस्तक "अलौकिक" पढ़ने के बाद मेरे पाठक मेरे लिखे हुए दूसरे पुस्तक जो उस बात को दर्शाते हें की बाइबल के विषय में आपने कलिसिया में जो कुछ सुना है उससे ज्यादा सीखने की जरूरत है उसे पढ़ने में क्रमानुसार आगे बढ़ेंगे। वो पुस्तकें इस प्रकार है : *I Dare You Not to Bore Me with the Bible*; *The Bible Unfiltered: Approaching Scripture on Its Own Terms*; and *The Unseen Realm: Recovering the Supernatural Worldview of the Bible*.

में यह भी आशा रखता हूँ की आप सब मेरे *Naked Bible Podcast* के श्रोता बनेंगे। उसका शीर्षक ही बाइबल के मूल विषय को उसके प्राचीन संदर्भ में सिखाने के हेतु को बताता है, जो आधुनिक संस्थाकीय विचारों और आधुनिक पाश्चात्य नमूनों की कल्पनाओं से विपरीत है। में बाइबल की लिखावट को उसके मूल संदर्भ में समझाना चाहता हूँ और संस्कृतियाँ बाइबल की लिखावट के विषय में क्या कहती है उस पर आधार रखना नहीं चाहता। हर महीने सेंकड़ों श्रोतागण बाइबल को एक नए द्रष्टिकोण से फिरसे एक बार पढना सीखते हें। नियमित तौर पर बाइबल पढ़ने के द्वारा हरेक विश्वासी व्यक्ति खोज के इस रोमांच का अनुभव कर सकते हें। इसीलिए में यह कार्य कर रहा हूँ।

यह प्रस्तावना पढ़ने के लिए आपका धन्यवाद!

परिचय

परमेश्वर क्या चाहते हें ?

यह प्रश्न सरल लगता हे, मगर यदी आप इसके विषय में सोचेंगे तो यह इतना सरल प्रश्न भी नहीं हे।

क्यों? मसीह में शुरुआत करने वालों, आपको यह जानना ही चाहिए की यह प्रश्न कौन पूछ रहा हे? कई अलग कारणो के लिए लोग यह प्रश्न पुछेंगे। क्या यह किसी व्यक्ति की उसकी पीड़ा की वजह से गुस्से से आती हुई पुकार है? शायद यह बहुत ही निराशा की वजह से सुनाई देनेवाली बहुत धीमी आवाज हो सकती हे। क्या यह प्रोत्साहन देनेवाली उत्सुकता से भरा हुआ प्रश्न हे, या फिर गहरे विचारों को प्रगट करनेवाली इच्छा से पूछा गया प्रश्न हे? उसके सही उत्तर का आधार तो यह प्रश्न *क्यों* पूछा गया हे उस पर आधारीत हे।

में यह प्रश्न पूछ रहा हूँ इसलिए इसका उत्तर स्पष्ट करना मेरे लिए सरल है। पर सबसे पहले में आपको यह बताना चाहता हूँ की किस बात से मुझे यह प्रश्न पुछने की प्रेरणा या प्रोत्साहन नहीं मिला हे। मुझे इस प्रश्न का उत्तर नहीं पता हे इसलिए में यह प्रश्न नहीं पूछ रहा हूँ। मुझे इसका उत्तर पता हे। वास्तव में तो सब लोगों के लिए इस प्रश्न का उत्तर परमेश्वर क्या देंगे यह में जानता हूँ, इसलिए में स्पष्ट रीति से यह प्रश्न पूछ रहा हूँ। आपको कुछ महत्व की बातों के विषय में विचार करने की सहायता करने के लिए में यह प्रश्न पूछ रहा हूँ। जब में आपको पूछ रहा हूँ की, "परमेश्वर क्या चाहते हें?" तब वास्तव में मैँ यह पूछ रहा हूँ की, "मनुष्यजाति के हरेक व्यक्ति से परमेश्वर क्या चाहते हें?"

मैँ इस प्रश्न का उत्तर दूँ उससे पहले मैँ आपको ये बताना चाहता हूँ की यह एक धार्मिक प्रश्न हे। परमेश्वर के विषय में पुछे जानेवाले प्रश्नों को धार्मिक प्रश्न माना जाता हे। मैंने यह प्रश्न पूछा हे और मुझे परमेश्वर की बातों में दिलचस्पी हे इसलिए में इसका उत्तर दूंगा। अधिकांश लोगों को कलिसिया में दिलचस्पी न हो फिर भी परमेश्वर की बातों में दिलचस्पी होती हे, और यह स्वाभाविक भी हे, क्यूँ की परमेश्वर की बात करते समय आपको कलिसिया की बात करनी ही चाहिए, ये जरूरी नहीं हे। में कोई पासबान नहीं हूँ, मगर मैंने बाइबल का अभ्यास करके मेरी कारकिर्दगी बनाई हे (हाँ, वास्तव में यह संभव हे)। में यह प्रश्न पूछ रहा हूँ इसलिए मेरा उत्तर बाइबल के आधार पर होगा। ऐसा कहकर में आपका ध्यान एक मुख्य बात की और आकर्षित करना चाहता हूँ। "परमेश्वर क्या चाहते हें?" इस प्रश्न का उत्तर बाइबल कैसे देगा यह समझाना मेरा उद्देश्य हे।

इस प्रश्न का उत्तर सरल हे, की परमेश्वर *आपको* चाहते हें।

इससे आपको आश्चर्य होगा। शायद आप इस बात पर संदेह भी करेंगे। मगर यह स्वाभाविक हे। यही सही उत्तर हे। ईमानदारी से कहूँ तो इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहना काफी नहीं हे। मगर इस एक वाक्य से इस प्रश्न का उत्तर कितना गहरा हे, यह आप नहीं जान पाओगे। इस उत्तर में कितना प्रेम छिपा हुआ हे उसकी प्रशंसा करने के लिए आपको उसके संदर्भ को जानने की जरूरत हे। उस प्रश्न के उत्तर के पिंछे एक लंबी और अद्‌भुत बात हे।

ऐसी बात हे तो फिर यह पुस्तक सिर्फ परमेश्वर क्या चाहते हें उस बात के लिए ही नहीं, वरन *परमेश्वर* आपको कौनसी बातें बताना चाहते हें उसके विषय में भी हे। हाँ, परमेश्वर आपको चाहते हें, पर आप इस बात की प्रशंसा करो, और परमेश्वर जैसी ही भावना का अनुभव करो इसलिए आपको इसके संदर्भ को जानने की जरूरत हे।

हाँ, यह बताना मेरी ज़िम्मेदारी हे। हम परमेश्वर की बात से शुरुआत करेंगे। उस बात में बहुत दु:खद घटनाएँ हें, पर उससे आपके (या मेरे) लिए परमेश्वर का मन बदला नहीं। एकबार में यह बात बता दूँ उसके बाद उसके महत्व के भागों के बारे में बताऊंगा। हालाँ की पूरे पुस्तक में सिर्फ यही बात नहीं हे, इसलिए अगर आप उत्साही पाठक नहीं हो तो आप खुशनसीब हो। मगर यदि आप सिर्फ इसी बात के विषय में लिखा हुआ विभाग पढ़ोगे तो हमने जिस प्रश्न से शुरुआत की हे उसका उत्तर आपको मिलेगा। मेरा अनुमान हे की फिर भी आप इस पुस्तक को आगे पढेंगे। में आशा रखता हूँ की आप पढेंगे। इसमें अच्छी बातें हे।

इसकी शुरुआत करने से पहले मेरे पास एक अस्वीकृति की बात हे। अगर आपने आपके जीवन का अधिकांश समय गिरजाघर (चर्च) में बिताया हे तो शायद आपको ऐसा लगेगा की आप पहले से इस बात को जानते हो। हाँ, शायद आप उसके कुछ भागों को जानते होंगे, मगर में दावे के साथ कह सकता हूँ की इसमें बतायी गई कुछ बातों से आप को आश्चर्य होगा। दुर्भाग्य से, इस बात में जो मुद्दा हे वो धर्म का हे। कई बार गिरजाघर और संस्थाओं की अग्रिमताएँ मूल बातों से ज्यादा महत्व की बन जाती हे। मगर यह सही नहीं हे।

में ऐसा अनुमान करता हूँ की कुछ पाठक बाइबल से परिचित होंगे, मगर मैं निश्चित हूँ की उन पुराने सत्यों के विषय में विचार करते समय आपको नए सत्य और मार्गों के विषय मे जानकारी मिलेगी। अगर आप कभी भी गिरजाघर में नहीं गए या तो बाइबल के विषय में ज्यादा सुना नहीं हे, तो आप इस पुस्तक के योग्य पाठक हें। जिसे फिरसे सीखना हे या तो सीखा हुआ छोड़ देना हे ऐसा कुछ भी नहीं हे। दोनों रीति से में ऐसा मानता हूँ की परमेश्वर क्यों और क्या चाहते हें इसे खोजने के रोमांच का आप अनुभव करेंगे।

भाग 1 : मूल बात

अध्याय 1

परमेश्वर एक परिवार की इच्छा रखते थे

शुरुआत में मुझे परमेश्वर के लीये जो विचार था वो ऐसा विचार नहीं था की वो स्वर्गमें रहनेवाले एक अद्रश्य पिता हैं। परमेश्वर सरजनहार थे और एक दूर का पराक्रम या सामर्थ्य थे। मैंने ऐसा मान लिया था की परमेश्वर मेरे विषय में और दूसरे सब लोगों के विषय में जानते तो है, मगर वो मेरे विषय में, या तो जगत के सब लोगों के विषय में क्या विचार कर रहे हें उसका मुझे कोई ज्ञात नहीं था। मैंने ऐसा संदेह नहीं किया था की जैसे हम किसी कक्ष में किसी व्यक्ति की उपस्थितिका अनुभव करते हें ऐसा अनुभव मुझे नहीं हो रहा है इसलिए परमेश्वर वहाँ पर है या नहीं? मगर उसके बदले परमेश्वर तो मेरे लिए एक ऐसी दूर की व्यक्ति थे जो समय समय पर (जब में समस्या में होता हूँ तब) मुझ पर द्रष्टि करते है। मैंने ऐसा विचार नहीं किया था की परमेश्वर मुझे या आपको प्राप्त करना चाहते हें। मैंने ऐसा मान लिया था की परमेश्वर वास्तविक हें और मेरे साथ शत्रुता के संबंध में नहीं है। मगर में सिर्फ इतना ही जानता था। जैसे एक कहावत हे की, "द्रष्टि से परे, मन से परे।"

मुझे परमेश्वर के विषय में बहुत सीखना बाकी था। में परमेश्वर को नहीं खोजता था, इसलिए मैंने ऐसा मान लिया था की परमेश्वर भी मुझे नहीं खोजते है। अगर कोई मुझे इस विषय में प्रश्न पूछता तो में उनको ऐसा उत्तर देता था की, परमेश्वर के पास और भी बहुत सारे काम है। मैंने ऐसा अनुमान किया था की में कुछ भी (अच्छा या बुरा) नहीं करता हूँ, इसलिए परमेश्वर मुझ पर ध्यान दे इतना योग्य में नहीं हूँ।

में गलत था। परमेश्वर मुझे खोज रहे थे। मगर में वो जानता नहीं था। मगर अब में जानता हूँ की हमें खोजना तो परमेश्वर का स्वभाव है इसलिए उन्होंने मुझे खोजा है। परमेश्वर हुमारे साथ वचनबद्ध हैं।

हम परमेश्वर के विषय में यह सब बातें कैसे जान सकते हैं? (इस प्रश्न को मैं एक से ज्यादा बार पुछनेवाला हूँ, इसलिए इस पर ज्यादा ध्यान दें!) आइये, हम खुद की जाँच करें। हमने जो चिजें बनाई है उसकी देखभाल करना हमारा स्वभाव है। खास करके अगर हमने उसके लिए बहुत गंभीर प्रयत्न किए हें, या तो फिर अगर वो हमारे लंबे विचारों का परिणाम है, तब हम उसकी ज्यादा देखभाल करते हैं। हमने कोई वस्तु बनाई है, कोई सिध्धि प्राप्त की हे या तो उसके विषय में लंबे विचार किए है और अगर कोई व्यक्ति उसका उपहास करे, उसे हल्का माने, उसका नाश करे तो या तो फिर वो उसकी है ऐसा दावा करे तो हम गुस्सा करते हैं और चिढ जाते हैं। हम ऐसी भावना का अनुभव करते हें की वो वस्तुएं असाधारण है।

हमारा स्वभाव ऐसा हे इसलिए हमें ऐसी भावना का अनुभव होता है। हम खुद से परिचित हैं। हम सबका एक आंतरिक जीवन है। हमारे मन का एक जीवन है। जिससे हमें दु:ख या नुकसान होता हे उससे नहीं, मगर जिससे हमें आनंद प्राप्त होता है उसे प्राप्त करने के लिए हम हुमारी बुध्धि का प्रयोग करते हैं। उसके लिए हम अव्यवस्थित या बिना कोई हेतु के प्रयत्न नहीं करते हैं, मगर जान-बूझकर प्रयत्न करते हैं। हम हमारी समझदारी या अंत:प्रेरणा से मार्गदर्शन पाते हैं।

क्यों ये हमारा लक्ष्यांक है उसके बहुत उदाहरण हैं। जो कार्य हमें कम महत्ववपूर्ण लगते हें उस कार्य को भी किसी कारण से मार्गदर्शन पाते हुए जान-बूझकर करते हैं। हमारे दाँत में छेद हो या फिर श्वास में दुर्गंध हो यह हमें अच्छा नहीं लगता, इसलिए हम ब्रश करते हैं। हम सुबह उठते हें क्यों की हम हमारी नौकरी को खोना नहीं चाहते (या तो फिर कोई कार्य करने में हमे आनंद मिलता है)। हम दायें मुड़ने की बजाय बाँयें मुड़ते हैं क्यों की हमें कहीं जाना हे। कई बार हम अतार्किक कार्य भी करते हें (जैसे की सोशियल मीडिया पर कोई ऐसे व्यक्ति के विषय में लिखते हें, जो कभी उसे देखनेवाला नहीं है, या तो उसे उस बात की चिंता नहीं), क्यों की हम कोई इच्छित

परिणाम की आशा रखते हें (ऐसा करने के द्वारा हम किसी व्यक्ति से बढ़ाकर होने की या तो उन्हें कोई पाठ सिखाने की भावना का अनुभव करते हें) । जब हम कोई ऐसा कार्य करते हैं जो हमें पसंद न हो फिर भी वो काम भी किसी रीति से हमारे लिए अच्छा ही होगा ऐसे विचार के साथ करते हैं । क्यों हम भोजन का ध्यान रखते हें? क्यों की स्वभावगत रीति से उसका एक उद्देश्य है, हम बगर उद्देश्य के व्यक्ति नहीं है ।

यह सब बातों से विपरीत काम मन या भावनात्मक असंगतता की निशानी है ।

बाइबल के परमेश्वर एक बात बताते हें । परमेश्वर जो कोई काम करते हें उसका आनंद उठाने के लिए वो काम करते हें । परमेश्वर को किसी बात की घटी है इसलिए उन्होने मनुष्य को नहीं बनाया । ऐसा नहीं है की वे अकेले थे और सम्पूर्ण नहीं थे और उनको मित्रों की जरूरत थी । परमेश्वर के पास किसी भी बात की घटी नहीं है.....क्योंकि वो परमेश्वर है । हम ऐसा कह सकते हें की परमेश्वर को उनके हाथों के काम का आनंद प्राप्त करना था इसलिए उन्होने सब कुछ बनाया । और जैसे बाइबल में कहा है ऐसे "अपने स्वरूप में" (उत्पत्ति 1:26) जिन्हें बनाया है उनकी ज्यादा संभाल रखते हें । और वो तो आप और में हैं ।

हमारी कहानी की शुरुआत कहाँ से होती है?

हमारी कहानी – परमेश्वर क्यों हमें चाहते हें उस बात की शुरुआत बाइबल के उस विचार से शुरू होती है की परमेश्वर हमारे सर्जक हैं । हम इस बात को सम्पूर्ण रीति से समज नहीं सकते है, मगर फिर भी मुख्य बात तो यह है की परमेश्वर की इच्छा थी की हम यहाँ रहें इसलिए हमें यहाँ रखा गया है । परमेश्वर अव्यवस्थित काम नहीं करते हैं । परमेश्वर एक हेतु के साथ काम करते हें । जब परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया तब वो उनकी कोई खामी को पूरा करने का प्रयत्न नहीं कर रहे थे । परमेश्वर ने हमें क्यों बनाया उसका एक ही तार्किक अर्थघटन यह है की परमेश्वर को हमारी जरूरत नहीं थी फिर भी उन्होने हमें बनाया । परमेश्वर हमारा आनंद उठाना चाहते थे (और हम उनका आनंद मानें) इसलिए हमारा अस्तित्व हो ऐसी उन्होंने इच्छा व्यक्त की ।

परमेश्वर ने हमें बनाया है, इसलिए बाइबल परमेश्वर को "पिता" कहता हें, और आदम के द्वारा जो लोग उत्पन्न हुए उन्हे परमेश्वर के संतान कहता है । इसलिए बाइबल में परमेश्वर के साथ हमारा जो संबंध हे उसके लिए पारिवारिक भाषा का प्रयोग किया गया हे । इसमें कोई संयोग नहीं हे ।

में खुद से थोड़ा आगे बढ़ रहा हूँ । बाइबल में जिस पारिवारिक भाषा का प्रयोग किया गया हे उसके संदर्भ को समझने के लिए परमेश्वर ने पृथ्वी और मनुष्य की रचना की उस समय का विचार करने की जरूरत है । इससे आपको आश्चर्य होगा, मगर तब भी परमेश्वर अकेले नहीं थे । परमेश्वर ने अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए हमारा सर्जन नहीं किया उसका प्रमाण प्राप्त करने का यह दूसरा कारण है ।

बाइबल हमें बताता हे की परमेश्वर ने हमें बनाया उससे पहेले उन्होंने दूसरे बुध्धिशाली व्यक्ति बनाए थे । बाइबल उनको "ईश पुत्रों" कहेता हे । हम उनको स्वर्गदूत कहते हें । पुराने नियम में अय्यूब की किताब में हमें बताया गया हे की जब परमेश्वर ने पृथ्वी की नींव डाली थी तब ईशपुत्र "जयजयकार कर रहे थे" (अय्यूब 38:4-7) । वो पहले से वहाँ उपस्थित थे और सर्जन की प्रक्रिया को देख रहे थे । "ईशपुत्र" यह शब्दों के विषय में विचार कीजिये । जिस ईब्रानी शब्दों का अनुवाद "पुत्र" किया गया हे उसका अनुवाद "लड़के या बच्चे" भी कर सकते हें । यह "ईशपुत्र" शब्द किसकी बात कर रहा हे?

परमेश्वर को यकीन था की उन्होने जिन लोगों की रचना की हे वे लोग इस पृथ्वी पर उनके स्वरूप के जैसे कार्य कर सकते हैं । परमेश्वर ने अपनी विशेषताएँ (अपने गुण और योग्यताएँ), उनकी बुद्धि और सर्जनात्मकता मनुष्यों को दी । बाइबल हमें कहता हे की मनुष्य तो छोटे परमेश्वर हैं । परमेश्वर के नए जगत में हम परमेश्वर के साथी अधिकारी और संभाल रखनेवालों के जैसे परमेश्वर के साथ सहभागी हो सकें इसके लिए परमेश्वर ने हमें बनाया ।

परमेश्वर जैसे होने की कल्पना करनी वो बहुत कारणो से एक महत्व का विचार हे । वो हम सबको एक सलामत और गहेरी पहचान देता हे । हरेक मनुष्य उनके बालक और साथी बने ऐसी परमेश्वर की मूल इच्छा थी । परमेश्वर लोगों को इस प्रकार देखते हें । हमें भी लोगों को ऐसी द्रष्टि से देखना चाहिए । हम हरेक व्यक्ति को हमारे भाई या बहन के जैसे देखें ऐसी परमेश्वर की इच्छा हे । हम सबके पास

परमेश्वर का स्वरूप होने की पदवी हे, जिसकी परमेश्वर अपने परिवार में इच्छा रखते हें। वंशवाद, हिंसा, जबरदस्ती और हेरफेर करना यह सब मनुष्य के लिए परमेश्वर की इच्छा का भाग नहीं थे । यह तो विद्रोह और पाप का दुष्ट परिणाम हे। परमेश्वर मनुष्य से प्रेम रखते हें और पाप ने मनुष्यों का जो बुरा किया हे उस बुराई से धृणा करते हें। जब हम अपनी या दूसरों की नैतिक निष्फलताओं का विचार करते हें तब इस बात को याद रखने की जरूरत हे।

परमेश्वर होने के जैसी कल्पना करनी यह विचार हमें एक उद्देश्य देता हे। हमारा एक मिशन हे। हरेक व्यक्ति, फिर वो कितने भी छोटे या निर्बल या कम जीनेवाले क्यों न हो मगर दूसरे व्यक्ति के जीवन में उनका एक कार्य हे। हम परमेश्वर को सन्मान देते हुए हमारे जो हरेक कार्य और हमारे साथी स्वरूप पर मन लगाते हें तब वो हमारी *आत्मिक बुलाहट* बनती हे। परमेश्वर के मनमें पासबान, सेवक या याजक की बुलाहट दूसरी कोई भी बुलाहट से बड़ी नहीं हे। हम जीस रीति से जीवन जीते हें उससे हमारे साथी स्वरूप में जो लोग हें वो या तो आशिषित होते हें, उन्हें जीवन और परमेश्वर के साथ संगति क्या हे उसे याद दिलाया जाता हे, या तो वे लोग श्रापित होते हैं। हम जो कुछ करते हें – खास करने कइ बार जब छोटा या अनिश्चित कार्य करते हैं तब उसकी अच्छी या बुरी असर होती हे।

शुरुआत में मैंने जो प्रश्न पूछा था उसका उत्तर यही हे। परमेश्वर क्या चाहते हैं? परमेश्वर आपको चाहते हैं। परमेश्वर एक परिवार की इच्छा रखते हैं। परमेश्वर साथी कार्यकर की इच्छा रखते हें। परमेश्वर की इच्छा हे की आप कौन हो और क्यों आपका जीवन उनके लिए महत्व रखता हे उस बात को आप जानें।

मगर अभी तो हमने सिर्फ शुरुआत ही की हे। इस बात में और भी बहुत कुछ है। हमारे जगत में हमारा जीवन – और शायद हमारे खुद के घर में हमारा जीवन परमेश्वर के दर्शन के अनुकूल नहीं है। ऐसा कुछ हुआ, जिससे वो बिगड़ गया। इससे परमेश्वर को इतना दु:ख हुआ की परमेश्वर ने मनुष्यों को *लगभग* छोड देने का निर्णय किया था।

अध्याय 2

परमेश्वर अब भी एक परिवार की इच्छा रखते थे

पिछले अध्याय में मैंने बताया की परमेश्वर ने लोगों को इस पृथ्वी पर अपने स्वरूप को प्रगट करने के लिए सुसज्जित किया था। परमेश्वर ने यह कार्य अपनी विशेषताएँ (उनके गुण और योग्यताओं को) लोगों को देकर किया था। यह बात इतनी अद्भूत लगती थी (और अद्भूत हे), मगर वहीं से कुछ बातें दिलचस्प और डरानेवाली बनी। परमेश्वर के विशिष्ट गुणो में से एक गुण तो स्वतन्त्रता हे – जिसे हम कई बार स्वतंत्र इच्छा भी कहते हें। अगर आपने कभी भी ऐसा विचार किया हो की क्यों इस जगत में दुष्टता हे, तो बाइबल इसका उत्तर इस प्रकार देता हे।

विद्रोह # १

जब परमेश्वर ने उनके बच्चों के साथ अपने गुण बांटने का निर्णय किया तब वो उसका परिणाम जानते थे। परमेश्वर सब जानते हे, इसलिए क्या होगा उसके बारे में वो स्पष्ट रीति से जानते थे। परमेश्वर ने पहले जो स्वर्गीय परिवार बनाया था तब भी उनका यही निर्णय था। उनको भी बुद्धि और स्वतन्त्रता दी गई थी। उनको उनके सृजनहार की और से वो वरदान मिले थे।

परमेश्वर जानते थे की जल्द ही या थोड़े समय के बाद उस वरदानों का दुरुपयोग होगा, या तो उसे बिगाड़े जाएंगे। परमेश्वर अच्छी रीति से जानते थे की आत्मिक जगत में या पृथ्वी पर उनके बच्चे उनके जैसे हे, मगर वो ईश्वर नही। वे ईश्वर से नीचे ही हें। वो अपूर्ण थे, मगर परमेश्वर सम्पूर्ण है। परमेश्वर जानते थे की कब उनके बच्चे भूल करेंगे या तो सोचे बगैर कोई कार्य करेंगे, और परमेश्वर उनसे जो कार्य करवाने की इच्छा रखते थे उसके विरुद्ध विद्रोह करेंगे।

अदन वाटिका में यही हुआ था। आदम और हव्वा ने विद्रोह किया था। उन्होंने भले और बुरे के ज्ञान का जो वृक्ष था उसके फल को न खाने की आज्ञा को तोड़ा था। उन्होंने पाप किया और परमेश्वर की उपस्थिती में जो अनन्त जीवन था उसे खो दिया था। उसके बाद अदन वाटिका के बाहर जो भी मनुष्यों का जन्म हुआ वो सब परमेश्वर से दूर थे। प्रेरित पौलूस उसके विषय में बात करते हुए कहता हे की, "क्योंकि पाप की मजदूरी तो मृत्यु है, परंतु परमेश्वर का वरदान हमारे प्रभु मसीह यीशु में अनन्त जीवन है।" (रोमियों ६:२३)

इसके पहले जो विद्रोह हुआ था उसकी वजह से यह दु:खद घटना हुई थी। परमेश्वर के अलौकिक परिवार में से किसी ने हव्वा की परीक्षा करके मानवीय परिवार होने का परमेश्वर का जो निर्णय उसका अपमान किया था, और परमेश्वर आदम और हव्वा का विनाश करेंगे ऐसी आशा रखी थी। वो सर्प के रूप में हव्वा के पास आया था (उत्पत्ति ३:१-७)। बाइबल उस सर्प को इबलीस और शैतान कहता है (प्रकाशितवाकय १२:९)। वो हव्वा को पाप करवाने में सफल तो हुआ था, पर मनुष्यों का हंमेशा के लिए विनाश करने में असफल हुआ था।

यहाँ कुछ गहरे सत्य हें, उन सत्यों में से एक सत्य तो यह हे की हरेक व्यक्ति उसके जीवन में एक बार जो प्रश्न पूछता है, वो प्रश्न और उसका उत्तर तो यह हे की : क्यों इस जगत में बुराई हे? इस जगत में बुराई का अस्तित्व हे, क्यों की परमेश्वर ने अपने जैसे व्यक्तियों का सर्जन करने का निर्णय किया था। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं हे की परमेश्वर का एक बुरा पहलू भी हे। मगर में ऐसा कहना चाहता हूँ की परमेश्वर ने मनुष्यों को रोबोट जैसे या पहले से प्रोग्राम किए गए कंप्यूटर के जैसे बनाने के विचार का इन्कार किया था।

उसका आखरी बिन्दु महत्व का है। परमेश्वर की समानता में होना प्रमाणभूत और अधिकारिक होना चाहिए। अगर हमारे पास खुद निर्णय करने की क्षमता न हो तो हम परमेश्वर जैसे नहीं हो सकते। परमेश्वर रोबोट नहीं हे और हमें परमेश्वर जैसे बनाया गया था। वास्तविक स्वतंत्र इच्छा के बगैर हम प्रमाणभूत या अधिकारिक रीति से परमेश्वर से प्रेम नहीं कर सकते और उनको अधीन नहीं हो

सकते। अगर हमारे निर्णय पहले से प्रोग्राम किए हों तो उसे सही निर्णय नहीं कहा जा सकता। प्यार करना और अधीन होना उसके विषय के अधिकारिक और प्रमाणभूत निर्णय लेने के लिए संभव हो ऐसे सभी विकल्पों के विरुद्ध निर्णय लेना ही पड़ेगा।

इस पूरी बात का परिणाम यह हे की बुराई का अस्तित्व हे, क्यों की लोग परमेश्वर के दिये गए स्वतंत्र इच्छा के वरदानों का दुरुपयोग करते हें, और आत्मसंतोष के लिए, बदला लेने के लिए या तो खुद के राज्य की स्थापना करने के लिए उसका उपयोग करते हें। इस दुरुपयोग की शुरुआत अदन के वाटिका से हुई थी।

मगर परमेश्वर को इससे आश्चर्य नहीं हुआ था। उन्होंने तो उसकी अपेक्षा रखी थी। क्या होगा वो परमेश्वर पहले से जानते थे और उसके अनुसार योजना भी बनाई थी। परमेश्वर ने अपने विरुद्ध विद्रोह करने के लिए अपने मानवीय बच्चों का विनाश नहीं किया था। मगर उनको माफ करनेवाले थे और छुड़ानेवाले थे। बाइबल उस बात को स्पष्ट करता हे की क्या होगा वो परमेश्वर ने पहले से देखा था, और अपने विरुद्ध विद्रोह हो उससे पहले – स्पष्ट रीति से कहें तो "जगत की उत्पत्ति से पहले" क्षमा और उद्धार की योजना बनाई थी। (इफिसियों १:४; इब्रानीयों ९:२६-१०:७; १ पतरस १:२०)।

उद्धार की योजना को पूरी करने के लिए परमेश्वर को मनुष्य बनना था। हम हमारी बात के उस विभाग में जल्द ही जायेंगे। मगर वो घटना बने उसके बहुत समय पहले अदन वाटिका में जो हुआ था उसकी एक कीमत चुकानी थी। परमेश्वर ने आदम और हव्वा को अपनी उपस्थिती में से निकाल दिया था। (उससे उनकी सन्तानें भी परमेश्वर की उपस्थिती में नहीं थी।) अब अदन वाटिका नहीं थी। मगर उसकी बजाय परमेश्वर पिता के साथ अनन्त जीवन के बदले मनुष्यों को अब मृत्यु की राह देखनी थी (रोमियों ५:१२)। यह तो जीवन के श्रोत से यानि की परमेश्वर से अलग होने की कीमत थी।

पाप की असर की वजह से परमेश्वर ने उनके बच्चों को अपने घर में से निकाल दिया था। मगर सर्प ने मनुष्यों के नाश के विषय में जो अपेक्षा रखी थी उससे तो यह परिणाम अच्छा ही था। परमेश्वर ने मानवीय परिवार होने की अपनी इच्छा को छोड नहीं दिया था, मगर विद्रोह की एक कीमत चुकानी पड़ी। परमेश्वर ने शैतान को भी दंड दिया था। परमेश्वर के जगत में मृत्यु को लाने की वजह से शैतान मरे हुए लोगों के राज्य का प्रभु बन गया, जिसे बाद में नर्क से पहचाना गया।

दूसरी कोई योजना या विकल्प नहीं

इस समय शायद आपको ऐसा विचार आए की क्यों परमेश्वर ने मानवीय परिवार होने की पूरी योजना को छोड नहीं दिया?

दूसरी कोई योजना या विकल्प नहीं

इस समय शायद आप ऐसा सोचें की क्यों परमेश्वर ने अपना मानवीय परिवार होने की अपनी पूरी योजना को छोड नहीं दिया? स्वतंत्र इच्छा से पाप किया जायेगा और सेंकड़ों वर्षो तक मनुष्य हिंसा, इनकार, स्वार्थ और दूसरी कई बुराइयाँ करने के द्वारा एक दूसरे को परेशान करेंगे यह जानते होने के बावजूद भी परमेश्वर ने खुद स्वतंत्र इच्छा की अनुमति दी थी। शायद आपके दु:ख की वजह से या तो आपके आसपास आप जो घटनाएँ होती देख रहे हैं उसकी वजह से आपको ऐसी इच्छा हो की परमेश्वर ने सबका नाश कर दिया होता तो अच्छा होता।

आप मानें या न मानें मगर परमेश्वर इस भावना को समझते हें। आप जिस बुराई को देखते हो उसे परमेश्वर भी देखते हें। परमेश्वर ने ऐसी अपेक्षा नहीं रखी थी। मगर आप ऐसा कहेंगे की, वे *तो परमेश्वर* हे – तो क्या इन सारी बातों पर अधिकार नहीं रख सकते? यह इतना सरल नहीं है। इसके विषय में सोचें। जो बुरा करते हें उनका नाश करके परमेश्वर बुराई को दूर कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहें

तो, अगर परमेश्वर बुरे लोगों का नाश करें तो बुराई का नाश कर सकते हें। सब लोग पाप करते हें (रोमियों 3:10-12) और बाइबल बताता हे की, "सब परमेश्वर की महिमा से वंचित हो गए हें।" (रोमियों 3:23) इसलिए ऐसा कह सकते हें की परमेश्वर बुराई का नाश तो कर सकते हें, पर ऐसा नहीं करते। परमेश्वर मनुष्यों से इतना प्रेम करते हें की उन्होंने इस विकल्प का चुनाव नहीं किया।

यह सब बातें एक अद्‌भूत सत्य बताती हें : हमें अपने जैसा बनाने के द्वारा क्या होगा यह जानते होने के बावजूद भी परमेश्वर ने अपना मानवीय परिवार न होने के विकल्प के चुनाव को अग्रिमता नहीं दी। हमारे जगत में जो पाप और दु:ख हें उसको और उसके कारण को परमेश्वर जानते हैं। उससे परमेश्वर दु:खी होते हैं। परमेश्वर अपने मानवीय संतानों के लिए प्रेम से इस हद तक भरे हुए हैं की उन्होंने अपने मूल उद्देश को नहीं बदला। दूसरे कोई विकल्प का नहीं पर सिर्फ एक ही योजना का चुनाव किया। अदन वाटीका में जो विद्रोह हुआ उसके बाद जो निष्फलता और पाप होंगे – जिसमें हमारे पाप का भी समावेश होता हे – यह पहले से जानते होने के बावजूद परमेश्वर ने मानवीय परिवार की इच्छा रखी।

अदन वाटिका में जो हुआ वो तो बात की शुरुआत का एक भाग ही हे। परमेश्वर ने आदम और हव्वा को उनके घर में से निकाल दिया (उत्पत्ति 3:22-24)। परमेश्वर ने सांप को श्राप दिया (उत्पत्ति 3:14-15) और अपनी उपस्थिती में से निकाल दिया (यशाया 14:12-15; यहेजकेल 28:16)। संदेश इतना प्रबल और सरल था की : विद्रोह का दंड होना चाहिए। आपको ऐसा लगेगा की सबको सन्देश मिल गया हे। पर ऐसा नहीं है। परिस्थिति और भी बिगड़ गई।

विद्रोह # 2

आपने शायद ऐसा सुना होगा की बाइबल सिखाता हे की मनुष्य ने अदन वाटिका में पाप किया उसकी वजह से इस जगत में बुराई और दुष्टता हे। मगर यह एक अर्धसत्य हे। अदन वाटिका में जो दु:खद घटना हुई उसके बाद ऐसी दो घटनाएँ हुई जिससे मानवजाति और भी अनैतिकता और गड़बड़ी या तो अव्यवस्था में फंस गई।

उस में से प्रथम घटना का वर्णन उत्पत्ति 6:1-4 में मिलता हे, जिसके विषय में दावे के साथ कह सकते हें की यह पूरे बाइबल की विचित्र घटनाओं में से एक घटना हे। (मुझ पर भरोसा करो, मैंने इस घटना के विषय पर पुस्तकें लिखी हे)। यह बात तो परमेश्वर के कुछ अलौकिक संतानोंने (यानि की "परमेश्वर के पुत्रों" ने) अपने स्वरूप में मानवीय संतानों को पैदा करने की परमेश्वर की इच्छा का अनुसरण किया था उसके विषय में हे। इस हेतु को पूरा करने के लिए उन्होंने मानवीय स्त्रियों का (यानि "मनुष्य की पुत्रियों" का) उपयोग करने का निर्णय किया था। इससे वो परमेश्वर के यानि की अपने खुद के स्वर्गीय पिता के प्रतिस्पर्धी बन गए। मनुष्य अपने परिवार के सदस्य बने ऐसी परमेश्वर की इच्छा से खुश होने के बदले, वे तो अपने साथी मनुष्यों के प्रभु बनना चाहते थे। यह परमेश्वर की इच्छा नहीं थी। परमेश्वर एक परिवार की इच्छा रखते थे, गुलामों की नहीं।

"जिन स्वर्गदूतों ने पाप किया" (2 पतरस 2:4) उन्होने स्वर्ग और पृथ्वी की सीमारेखा के विरुद्ध अपराध किया। उन्होने " अपनी मर्यादा से उल्लंघन किया और अपना निजी निवासस्थान छोड दिया " (यहूदा 6)। उसके परिणाम स्वरूप परमेश्वर ने उनको नर्क में दाल दिया (2 पतरस 2:4-5, यहूदा 6), मगर जो कार्य उन्होंने किया उसके परिणाम गंभीर थे। इस विद्रोह के विषय में विषय में बाइबल के इन दो पद को देखो :

प्रभु ने देखा की पृथ्वी पर मनुष्य का दुराचार बढ़ गया है, और उसके मन के सारे विचार निरन्तर बुराई के लिए ही होते हें। इस बात से प्रभु को दु:ख हुआ की उसने पृथ्वी पर मनुष्य को बनाया! (उत्पत्ति 6:5-6)

इन पद के बारे में विचार करो। *हरेक व्यक्ति के मन के सारे विचार निरन्तर बुराई के लिए ही थे /* परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया उसका उनको दु:ख हुआ और परमेश्वर दु:खी हुए।

यह तो बुराई और उसके बाद जो दु:ख आया उसकी व्याख्या हे। जो प्रथम अलौकिक विद्रोह किया गया उसने मानवजाति का परमेश्वर के साथ जो अनन्त जीवन था उसे खोने के मार्ग पर अगुवाई की। इस विद्रोह की वजह से पाप की असर दूसरे स्तर तक फैली और मनुष्य अपने विनाश के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ा। जिस रीति से यह सब बातें हुई थी उससे परमेश्वर को दु:ख हुआ था। मानवजाति को स्थायी रूप से नुकसान हुआ था।

बाइबल हमें कहता हे की परमेश्वर मानवजाति के विनाश के लिए जलप्रलय को भेजने के अलावा दूसरा कोई उपाय देख सके नहीं (उत्पत्ति 6:17)। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है की जलप्रलय की बात कभी भी ऐसा नहीं कहती की परमेश्वर क्रोधित थे। यह बात तो हमें बताती है की जो हो रहा था उससे परमेश्वर दु:खी थे। परमेश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्रता देने का निर्णय किया था। अगर वो स्वतन्त्रता ले ली जाये तो इसका अर्थ यह हे की मनुष्य परमेश्वर जैसा नहीं रहेगा, वो मनुष्य रहेगा ही नहीं। परमेश्वर के विद्रोह करनेवाले पुत्रों ने जो किया उसका अंत लाना और फिरसे शुरुआत की जाये यही एक चुनाव था।

परमेश्वर की द्रष्टि में सिर्फ एक ही इंसान न्यायी था और वो तो नूह था (उत्पत्ति 6:9)। वहाँ एक न्यायी पुरुष तो था। परमेश्वर ने उसको लिया और अपना एक मानवीय परिवार होने की अपनी योजना को आगे बढ़ाने के लिए उसका उपयोग किया।

नूह और उसका परिवार और सब प्राणी बच जाये इसलिए परमेश्वर ने नूह को एक जहाज बनाने को कहा। परमेश्वर को अभी भी ऐसी आशा थी की मनुष्य की दुष्टता चाहे कितनी भी क्यों न हो पर उपनी मानवीय संतान उनके साथ रह सकते हें। जलप्रलय के लिए तैयारी करने के लिए और लोगों को उनकी दुष्टता की माफी प्राप्त करने की बात करने के लिए (2 पतरस 2:5) परमेश्वर ने दया करके नूह को 120 वर्ष का समय दिया था (उत्पत्ति 6:3)।

अंत में लोगों ने परमेश्वर की बात नहीं मानी। उन्होंने परमेश्वर के अनुग्रह में मिली हुई चेतावनी का इंकार किया। फिरसे एकबार परमेश्वर के बच्चोंने उनकी स्वतन्त्रता का उपयोग करके परमेश्वर की और अपनी पीठ दिखाई। परमेश्वर का ह्रदय बहुत टूट चुका होगा, क्या इस बात में कोई आश्चर्य हे? मगर वहाँ नूह और उसका परिवार था। जलप्रलय के बाद परमेश्वर ने आदम और हव्वा को जो मूल आज्ञा दी थी की ("फलो-फूलो और पृथ्वी में भर जाओ" उत्पत्ति 9:1)। वही आज्ञा नूह को दी। परमेश्वर उनके द्वारा नयी शुरुआत कर रहे थे। परमेश्वर ने नूह के साथ वाचा बांधी जो पूरी मानवजात के साथ बांधी हुई वाचा थी (उत्पत्ति 9:8-17)। वाचा तो वचन या प्रतिज्ञा है। ये वाचा एकपक्षीय थी; यह तो मानवीय परिवार का पानी से नाश न करने का परमेश्वर का वचन था (उत्पत्ति 9:11)। यह एक अद्‌भूत बात है की परमेश्वर अभी भी मानवीय परिवार की इच्छा रखते थे।

आश्चर्यकारक तो नहीं पर अद्‌भूत बात तो यह थी की परमेश्वर की भलाई का दुरुपयोग अभी भी चालू ही रहा था। जलप्रलय के बाद तीसरा विद्रोह हुआ था। उससे बाइबल की बाकी की बात की शुरुआत होती है और वहाँ फिर से परमेश्वर की अजेय धीरज और प्रेम देखने को मिलते हैं।

विद्रोह # 3

आदम और हव्वा की और नूह के समय के जलप्रलय की बात के जैसे आपने बाबेल के मीनार की बात भी सुनी होगी। अगर न सुनी हो तो भी चिंता मत कीजिये, क्योंकि कलिसिया में जानेवाले अधिकांश लोग वहाँ *वास्तव* में क्या हुआ था यह नहीं जानते हें।

बाबेल के मीनार की बात उत्पत्ति 11:1-9 में देखने को मिलती है। जलप्रलय होने के बाद परमेश्वर नूह के संतानों की वृद्धि करके उनको पूरी पृथ्वी में फैलाना चाहते थे। आदम और हव्वा के जैसे वे भी परमेश्वर की सृष्टि की देखभाल करने के लिए परमेश्वर के साथी कार्यकर थे। पर ऐसा करने के बदले वे लोग तो बाबेल नामक एक स्थल पर खुद का नाम करने और मीनार बांधने के लिए इकट्ठा हुए थे (उत्पत्ति 11:1-4)।

ये तो कहानी का परिचित भाग है, मगर बाइबल की एक दूसरी पुस्तक में बताए गए दो अपरिचित पद में उसका वास्तविक अर्थ हे। ये पद इस प्रकार हैं :

> जब परमप्रधान ने एक एक जाती को निज निज भाग बाँट दिया, और आदमियों को अलग अलग बसाया, तब उसने देश देश के लोगों की सीमाएं इस्राएलियों की गिनती के अनुसार ठहराई। क्यों की यहोवा का अंश उसकी प्रजा है; याकूब उसका नापा हुआ निज भाग है। (व्यवस्थाविवरण 32:8-9)

यह दो पद हमें बताते हैं की बाबेल की मीनार के आगे जो न्याय किया गया उनमें से एक तो मनुष्यजाति के विभाग का न्याय था। बात के इस भाग तक परमेश्वर मानवजात के साथ एक सामूहिक व्यवहार कर रहे थे। पर बाबेल के समय पर यह व्यवहार बदल गया। मानवजाति अब भाषा और भौगोलिक परिस्थिति में विभाजित हो गई।

इससे भी बुरी बात तो यह थी की परमेश्वर ने खुद को मनुष्यजाति से अलग कर लिया। मनुष्य ने परमेश्वर की इच्छा की जो अवज्ञा की थी उससे ऊब कर परमेश्वर ने पृथ्वी पर के सारे देशों को अपने अलौकिक परिवार के दूसरे सदस्य – यानि की परमेश्वर के पुत्रों को सोंप दिया। यह समूह तो जलप्रलय के समय पर जिस समूह ने अपराध किया था उससे अलग था। परमेश्वर ने मनुष्यजाति को अपने घर से बहार नहीं निकाला। परमेश्वर ने अदन वाटिका में यह काम किया था। मगर जलप्रलय के बाद परमेश्वर ने मनुष्यजाति का विनाश न करने का वचन दिया था (उत्पत्ति 9:11)। इससे विपत्ति का पुनरावर्तन नहीं करना था। तो अब परमेश्वर क्या करेंगे? मानो परमेश्वर के लिये ऐसा कहना जरूरी था की, "बस, अब बहोतु हुआ! अगर तुम मुझे अपने परमेश्वर के तौर पर चाहते नहीं हो तो में तुम्हें मेरे स्वर्गीय सहायकों को सोंप दूंगा।"

न्याय के बहुत प्रकार थे। उसमें कितना समय लगा था उसके विषय में हमें कुछ नहीं कहा गया है, पर बाइबल हमें कहता है की परमेश्वर ने अपने जिन अलौकिक पुत्रों को देशों के ऊपर ठहराया था उन्होंने एक असंतोषकारक या हल्का काम किया था। वे इतने भ्रष्ट हुए थे (भजनसंहिता 82:1-5) की परमेश्वर को उनका भी न्याय करना पड़ा। एक दिन परमेश्वर उनकी अविनाशिता और उनको सोंपे हुए देश ले लेंगे (भजनसंहिता 82:6-8)। हमें ऐसा लगता होगा की परमेश्वर निराशा की वजह से चिढ़कर अपने मानवीय परिवार को खो बैठे। हमें ऐसा लगता हे की परमेश्वर ने हिम्मत खो दी। पर वास्तव में ऐसा नहीं हुआ।

परमेश्वर का निरंतर प्रेम

क्या आपने कभी भी बाबेल की मीनार की विपत्ति के बाद जो हुआ उसकी कल्पना की है? परमेश्वर अब्राहम के आगे प्रगट (तब वो अब्राम नाम से पहचाना जाता था) हुए थे। वो एक वृद्ध व्यक्ति था और उसकी पत्नी का नाम (सारा) था और उसकी बच्चे जनने की उम्र बीत चूकी थी। परमेश्वर ने अब्राहम के साथ वाचा बांधी। परमेश्वर ने इस वृद्ध पुरुष और उसकी पत्नी को वचन दिया की उनको एक बेटा देंगे। परमेश्वर चमत्कार करनेवाले थे। उनके पुत्र से इस पृथ्वी पर परमेश्वर एक नए परिवार की शुरुआत करनेवाले थे (उत्पत्ति 12:1-9; 15:1-6; 18:1-15)।

मानवजात को अपने स्वर्गीय परिवार के सदस्यों को बाँटकर परमेश्वर अब्राहम के द्वारा अपने परिवार की नई शुरुआत करना चाहते थे। अब्राहम ने परमेश्वर के वचन पर विश्वास किया था (उत्पत्ति 15:6)। उसने परमेश्वर के अनुग्रह को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया था। फिरसे शुरुआत करने के लिए *परमेश्वर ने* अब्राहम का चुनाव किया था। परमेश्वर और अब्राहम के साथ जो संबंध था उसकी शुरुआत परमेश्वर ने खुद की थी। अब्राहमने सिर्फ विश्वास किया था।

उसके बाद परमेश्वर ने अब्राहम को जो बुलाहट दी थी और अब्राहम ने परमेश्वर पर भरोसा किया था उससे जो वाचा के संबंध की शुरुआत हुई थी उसको याद रखने के लिए सुन्नत का द्रश्य और भौतिक चिह्न दिया गया था (उत्पत्ति 17:1-14; रोमियों 4:1-12)। अब्राहम के पूरे परिवार ने इस नमूने का अनुसरण किया था (उत्पत्ति 17:23)। अब्राहम के संतानों में से यह चिह्न परमेश्वर जिस परिवार की इच्छा रखते थे उस परिवार के सदस्यों के लिए अंकित किया गया था। सुन्नत का चिह्न तो अब्राहम की पीढ़ीमें जो स्त्रियाँ थी उनके लिए भी था। क्यों की उनको सिर्फ वही कुल में शादी करनी थी और यह तो उनको इस बात को याद दिलाता था की जब अब्राहम और सारा ने अपनी खुद की संतान हो ऐसी इच्छा व्यक्त की थी, तब परमेश्वर ने अलौकिक रीति से उनको पुत्र का वरदान दिया था और उनकी पीढ़ी को आगे बढ़ाया था।

इस बात को याद रखना महत्वपूर्ण है की अब्राहम के साथ परमेश्वर की जो वाचा थी उसका आधार तो परमेश्वर के वचनो पर जो विश्वास था उस पर है। अब्राहम अच्छी रीति से परमेश्वर के नियमों का पालन करता था इसलिए परमेश्वर ने उसका चुनाव नहीं किया था। उद्धार का आधार हमारे वर्तन पर आधारित नहीं है। हम हमारा उद्धार कमा नहीं सकते। अगर ऐसा होता तो परमेश्वर हमारे कार्यपालन के सदगुणो का कर्जदार होता। हमारी सिद्धियों के बदले में परमेश्वर हमारा *कर्जदार* होता। थोड़ा विचार तो करो की यह कितना विचित्र होता! पर अब्राहम और उसकी संतानों ने वाचा के चिह्न का अवलोकन करने के द्वारा परमेश्वर के वचनो पर विश्वास किया था। उनकी वफादारी को दर्शाने की यह एक बाह्य रीत थी।

पौलूस प्रेरित ने वफ़ादारीपूर्वक विश्वास करने के उदाहरण के रूप में अब्राहम का प्रयोग किया था (रोमियों 4:1-12)। अब्राहम कोई भी नियम का पालन करे उससे *पहले* उसने विश्वास किया और इससे उसका स्वीकार किया गया। उसका नियमों का पालन करना इस बात को बताता है की उसने विश्वास किया था। उसके विश्वास के बदले उसकी अधीनता को नहीं रखा जा सकता। विश्वास महत्वपूर्ण और जरूरी बात थी। परमेश्वर है, ऐसे विश्वास की वफादारी के विषय में हम आगे बात करेंगे। आज हम उसे शिष्यत्व या चेला बनाना कहते हें। विश्वास और वफादारी दो अलग बातें हैं। हाँ ये दोनों एक दूसरे के साथ जुड़ी हुए है, पर उसकी अदलाबदली नहीं कर सकते हैं। हमारे उद्धार और शिष्यत्व के विषय में यही बात सही है।

अब्राहम को पुत्र का वचन देना (और उसके द्वारा एक बढ़ी देशजाति बने ऐसे एक नए परिवार की शुरुआत करनी) यह तो अदन वाटिका की विपत्ति के बाद परमेश्वर ने बांधी हुई दूसरी वाचा है। पहली वाचा नूह के साथ की गई थी। पर एक मानवीय परिवार होने के परमेश्वर के स्वप्न को सलामत रखने के लिए परमेश्वर ने ये दो वाचाएँ बांधी थी। पर ये वाचाएँ हमें बताती है की परमेश्वर ने हिम्मत खो नहीं दी थी। ये वाचाएँ तो लोगों तक अनन्त जीवन को फैलाने के लिए दी गई थी। परमेश्वर ने मानवजाति को छोड नहीं दिया था। परमेश्वर लोगों से प्रेम करना बंद नहीं कर सके। परमेश्वर अभी भी खुद का एक मानवीय परिवार हो ऐसी इच्छा रखते थे।

परमेश्वर ने अब्राहम को दी हुई वाचा को पूरा किया था। सच में उसके द्वारा सारा को एक पुत्र इसहाक हुआ था (उत्पत्ति 17:19-21; 21:1-7)। अब्राहम का विस्तृत परिवार "इस्राएल" नाम से जाना गया, पुराने नियम में बार बार ये नाम परमेश्वर के मानवीय परिवार के लिये उपयोग में लिया गया है (उत्पत्ति 32:28; व्यवस्थविवरण 32:9; यशाया 44:1)। पर बाबेल की मीनार के सामने जो विद्रोह किया गया तब परमेश्वर ने दूसरे देशों को परमेश्वर के पुत्रों को सोंप दिया था उनका क्या? बाइबल में उनको "अन्यजाति" कहा गया है, उसका अर्थ यह है की वे "इस्राएल के नहीं"। बाबेल की मीनार के आगे जो हुआ उसके बाद भी परमेश्वर अपने लोगों को भूले नहीं थे। परमेश्वर फिरसे एकबार नए लोग (यानि की इस्राएल के लोगों के द्वारा) फिरसे शुरुआत करनेवाले थे इतना ही नहीं, परमेश्वर ने अब्राहम को कहा की एक दिन उसकी सन्तानें जिन दूसरे देशों को परमेश्वर ने छोड दिया था उनके लिए आशीष का कारण बनेंगी (उत्पत्ति 12:3)

। बहुत सालों बाद अब्राहम के परिवार में जन्मा हुआ यीशु उन दूसरे देशों को परमेश्वर के पास लानेवाला एक खास संतान बना था (गलतियों 3:16-18, 26-29)। यीशु के आने से पहले अन्यजाति लोग दूसरे सभी देवों का इन्कार करके, परमेश्वर पर विश्वास करके और परमेश्वर की वाचा का चिह्न लेकर परमेश्वर के परिवार के साथ जुड़ सकते थे।

अब्राहम और यीशु के बीच बड़ा लंबा समय बीत चूका था। इस्राएली लोग जो "यहोवा का अंश" (व्यवस्थाविवरण 32:9) थे उनका इतिहास भी कुछ अच्छा नहीं था। वे परमेश्वर के लोग थे, मगर निराशाजनक बात तो यह थी की वे अपनी वफादारी में निष्फल हो चुके थे। अभी भी एक अंधकरमय समय आनेवाला था।

अध्याय 3

परमेश्वर के परिवार के द्वारा उनके साथ विश्वासघात किया गया

बाइबल में इस्राएल का इतिहास तो विजय और दु:ख से भरी हुई बातों की एक लंबी सर्पाकार घटना है। परमेश्वर को आश्चर्य नहीं हुआ था। लोगों के पास से कैसी अपेक्षा रखनी हे यह परमेश्वर जानते थे। परमेश्वर जानते थे की वे किसका सामना कर रहें हैं।

लंबे समय तक एक ही स्थल पर रहकर थक जाना

परमेश्वर ने अब्राहम को बताया था की उसकी संतानों का जीवन समस्याओं से भरा हुआ होगा। परमेश्वर ने इमानदारीपूर्वक अब्राहम से कहा था की, "यह निश्चय जान की तेरे वंश पराए देश में परदेशी होकर रहेंगे, और उस देश के लोगों के दास हो जाएँगे; और वे उनको चार सौ वर्ष तक दु:ख देंगे" (उत्पत्ति 15:13)। यह एक बुरा संदेश था। फिर भी परमेश्वर ने आशा दी थी की, "फिर जिस देश के वे दास होंगे उसको में दण्ड दूँगा : और उसके पश्चात वे बड़ा धन वहाँ से लेकर निकाल आएँगे" (उत्पत्ति 15:14)।

अब्राहम की सन्तानें वास्तव में तो उसके पोते याक़ूब – जिसका नाम बदलकर "इस्राएल" किया गया था, उसकी अगुवाई में मिस्त्र देश में फ़िरौन राजा के अधिकार के नीचे आ गए थे (निर्गमन 1)। अकाल से बचने के लिए परमेश्वर की अनुमति में वे लोग वहाँ गए थे (उत्पत्ति 45:5-11)। उन्होंने जो गलत काम किया था वो तो यह था की अकाल का समय पूरा होने के बाद उनको वहाँ से वापिस आ जाना चाहिए था, मगर वे लोग वापस नहीं आए। वे बड़े लंबे समय तक मिस्त्र में ही रहे।

मिस्त्र में इस्राएलियों की संख्या इतनी बढ़ गई की फ़िरौन राजा को ऐसा लगा की अब देश के राजा के तौर पर रहना कठिन होगा (निर्गमन 1:8-10)। इसलिए उसने उन भर भार डालकर उनके पास कठोरता के साथ सेवा करवाई और जो पुत्र जन्म लेता उसको मार डालने का आदेश दिया (निर्गमन 1:14-16)। मगर परमेश्वर ने हस्तक्षेप किया और उनको बढ़ाते गए (निर्गमन 1:8-21)।

इस्राएलने ऐसी कठिन परिस्थिति में मिस्त्र में चार सदियाँ बिताई। अंत में परमेश्वर ने हस्तक्षेप करके मूसा नामक एक लड़के का जीवन बचाया। परमेश्वर ने परिस्थिति को ऐसे अंकुश में ली की वो लड़का फ़िरौन के सामने उसके घरमें बड़ा हुआ (निर्गमन 2:1-10)। मूसा राजकुमार के जैसे जीवन जीता था पर एक दिन उसने एक इस्राएली व्यक्ति को बचाने के लिए एक मिस्री व्यक्ति को मार डालने का बड़ा अपराध किया। इसलिए न्याय से बचने के लिए उसे मिस्त्र में से भाग जाना पड़ा।

मूसा को मिद्यान नामक एक जंगल में नया जीवन मिला। परमेश्वर सिनै पर्वत पर जलती हुई झाड़ी में उसको मिले और इस मुलाक़ात से उसके लोग और जगत का इतिहास बदल जानेवाला था (निर्गमन 3:1-15)। परमेश्वर ने मूसा को फ़िरौन का सामना करने के लिए मिस्त्र में वापिस भेजा। उसे इस्राएलियों को छुड़ाने की मांग करनी थी। परमेश्वर ने मूसा का बचाव करने का और बल देने का वचन दिया था (निर्गमन 3:16-22)।

बाकी की कहानी तो जगत की प्रसिद्ध बातों में से एक है। अगर आपने कभी भी बाइबल नहीं पढ़ा है फिर भी शायद आपने इस बात को सुना होगा या तो उसके विषय में चलचित्र देखा होगा। जब फ़िरौन ने इस्राएलियों को जाने देने से इन्कार किया तब परमेश्वर ने मिस्त्र और उसके देवों के विरुद्ध संकट भेजे थे (निर्गमन 7-12)। मिस्त्र की गुलामी में से इस्राएलियों को छुड़ाने के लिए परमेश्वर ने मूसा का उपयोग किया था। जब मिस्त्रियों ने उनको मार डालने के लिए जंगल में उनका पिंछा करने का निर्णय लिया था तब परमेश्वर ने लाल समुद्र के दो भाग किए थे (निर्गमन 13:17 से निर्गमन 14)। लाल समुद्र में से पार जाना ये तो बाइबल में बताया गया एक अद्‌भूत

चमत्कार है। मगर परमेश्वर ने यहाँ कोई खेल नहीं दिखाया था, परमेश्वर तो अपने लोगों की रक्षा कर रहे थे। परमेश्वर अपना परिवार चाहते थे।

नियम और वफादारी

आखिर परमेश्वर ने मूसा के साथ जो बात की थी उसके अनुसार अपने लोगों को मिस्त्र में से बहार लाये थे। वहाँ उन्होंने इस्राएलियों को अपने नियम – यानि की दस आज्ञाएँ दी थी। परमेश्वर ने उनके साथ वाचा बांधी थी। इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है की इस्राएलियों को जो दस आज्ञाएँ दी गई थी उससे पहले ही वे परमेश्वर के लोग थे। जब मूसा ने फ़िरौन का सामना किया था तब परमेश्वर ने इन लोगों को अपनी प्रजा कहा था (निर्गमन 3:7; 4:23; 5:1; 6:7; 7:4)। नियम तो परमेश्वर के परिवार में स्थान प्राप्त करने का माध्यम नहीं थे। इस्राएली लोग *पहले से* परमेश्वर का परिवार थे।

हमें इस अंतर को समझने की जरूरत है। ये बहुत ही महत्वपूर्ण है। परमेश्वर के परिवार में स्थान प्राप्त करने के बदले *लोग परमेश्वर के परिवार में रहना चाहते हैं* ये बताने के लिए परमेश्वर ने उनको नियम दिये थे। परमेश्वर के नियम तो इस बात को बताते थे की वे लोग परमेश्वर के साथ विश्वासघात नहीं करेंगे, और दूसरे देवों की भक्ति नहीं करेंगे। अगर वे वफादार विश्वासी बने रहेंगे तो परमेश्वर उन्हें दूसरे देशों के आगे "याजकों का राज्य" (निर्गमन 19:5-6) बनाकर उनका उपयोग करेंगे। मनुष्य अपने परिवार के सदस्य हो ऐसी परमेश्वर की इच्छा थी। उन्होंने इस्राएल के समूह से इसकी शुरुआत की थी। अगर वे वफादार बने रहें तो दूसरे देशों के लिए आशीष का कारण बनेंगे (उत्पत्ति 12:3)।

इस वाचा को समझने का एक और द्रष्टिकोण है। परमेश्वर उन पर प्रेम रखे इसलिए उन्हे परमेश्वर के नियमों का पालन नहीं करना था। परमेश्वर ने पहले से इसराएल से प्रेम रखा था (व्यवस्थाविवरण 7:7-8)। परमेश्वर ने तो अलौकिक रीति से अब्राहम और सारा को पुत्र दिया था और उसके द्वारा आनेवाले समय में इस्राइल का निर्माण होनेवाला था। मुख्य मुद्दा तो यह है की परमेश्वर एक मानवीय परिवार की इच्छा रखते थे। वे परिवार के सदस्य बनने के लिए लायक बने उसके लिए परमेश्वर ने उनको नियम नहीं दिये थे। वे तो पहले से परमेश्वर का परिवार थे। परमेश्वर के नियम तो इस्राएलियों के प्रति परमेश्वर के विचार को बदलने के लिए नहीं दिये गए थे, पर परमेश्वर की सन्तानों को दूसरे देवों की भक्ति न करने के लिए, आनंदित जीवन जीने के लिए, और एक दूसरे के साथ शांति में रहने के लिए दिये गए थे।

महत्वपूर्ण बात यह है की परमेश्वर ने उनकी स्वतंत्र इच्छा को नहीं ले लिया था। परमेश्वर ने उनसे ऐसी अपेक्षा रखी थी की वे प्रेम से उनको बनानेवाले एकमात्र परमेश्वर पर विश्वास करें और दूसरे देवों को छोड दे। इस्राएल का कोई भी व्यक्ति अपनी स्वतंत्र इच्छा से परमेश्वर के प्रेम का इन्कार कर सकता था। वे विश्वास न करने का चुनाव कर सकते थे। वे दूसरे देवों की उपासना करने का चुनाव कर सकते थे। आगे हम देखेंगे के उन्होंने ऐसा किया भी था!

इस्राएली लोग सीनै पर्वत (जहां परमेश्वर ने उन्हे व्यवस्था दी थी) वहाँ से आगे चले तब परमेश्वर ने एक दूत के द्वारा उनको वाचा के देश में अगुवाई की थी (निर्गमन 23:20-23; न्यायियों 2:1)। मार्ग में उन्होंने ऐसी फरियादें की थी की हमारे पास पर्याप्त भोजन या पानी नहीं। परमेश्वर ने उनकी सब जरूरतों को पूरा किया था (निर्गमन 15:22-27; 16:1-30)। उन्हे घातक शत्रुओं के सामने लड़ना भी पड़ा था। पर परमेश्वर ने उन्हे बचाया था (व्यवस्थाविवरण 2-3; यहोशु 11-12; भजन संहिता 135:10-24; प्रेरितों 13:19)।

परिस्थिति और भी विकट हुई

आप शायद ऐसा विचार करोगे की परमेश्वर इस्राएलियों को वाचा के देश में लाये उसके बाद इस्राएली लोग परमेश्वर के प्रेम को समझे होंगे, और वफ़ादारी के साथ उनके विश्वास की वृद्धि हुई होगी। मगर ऐसा नहीं हुगा। उसके बदले उन्होंने तो दुष्टता के साथ रहने का निर्णय किया। उन्होंने उस देश में से मूर्तिपूजकों को (यानि उस देश में रहनेवाले और दूसरे देवों की उपासना करनेवाले) लोगों को बहार नहीं निकाला था। मानो इस्राएली लोग अपने भूतकाल के बारे में कुछ जानते ही नहीं थे की विद्रोह करने से समस्या आती है। उनकी बेवफाई और परमेश्वर के प्रति उनके प्रेम का अभाव उन्हे इस निरुत्साहित परिस्थिति में ले गए थे:

> "यहोवा का दूत गिलगाल से बोकिम को जाकर कहने लगा, ''मैं ने तुम को मिस्र से ले लाकार इस देश मेँ पहुंचाया है, जिसके विषय मेँ मैं ने तुम्हारे पुरखाओं से शपथ खाई थी। और मैं ने कहा था, 'जो वाचा मैं ने तुम से बांधी है, उसे मैं कभी न तोड़ूँगा; इसलिए तुम इस देश के निवासियों से वाचा न बाँधना; तुम उनकी वेदियों को ढा देना/ परंतु तुम ने मेरी बात नहीं मानी। तुम ने ऐसा क्यों किया है? इसलिए मैं कहता हूँ, "मैं उन लोगों को तुम्हारे सामने से न निकालूँगा; और वे तुम्हारे पाँजर मेँ काँटें, और उनके देवता तुम्हारे लिए फंदा ठहरेंगे। " (न्यायियों 2:1-3)

परमेश्वर को फिरसे अपने लोगों का न्याय करना पड़ा था। परमेश्वर ने मानो ऐसा कहा था की, "अब मेँ तुम्हारे साथ नहीं हूँ। तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है, तो आओ अब देखते हैं की तुम खुद कैसे इस काम को करते हो!" परमेश्वर जब उनके लोगों के साथ न हों तब उनका कितना बुरा होता है यह हम पहले देख चूके हैं। हम फिरसे इतिहास का पुनरावर्तन देख रहे हैं इससे परमेश्वर का प्रतिभाव भी पहले जैसा ही लगता है। इस्राएलियों को उनकी समस्या मेँ से बहार लाने के लिए परमेश्वर बार बार उनके पास वापिस आते हैं। हम सब ऐसे लोगों को जानते हैं। शायद आप भी उनमें से एक होंगे। आपने कोई भी व्यक्ति के प्रति प्रेम की वजह से तर्क से विरुद्ध जाकर भी उनको सहायता की होगी। अगर आप परमेश्वर के इस कार्य के विषय मेँ विचार करो तो आपको ये पागलपन लगेगा। पर वे परमेश्वर का इन्कार करे तो भी परमेश्वर मानवीय परिवार की इच्छा रखते हैं। उनका प्रेम तर्क की उपेक्षा करता है।

ऊपर जिस घटना की बात की गई है वो जिस पुस्तक मेँ से ली गई है वो तो न्यायियों पुस्तक मेँ कभी भी अंत न हो ऐसे आत्मिक विद्रोह का घटनाचक्र चलता हुआ दिखाई देता है। इसकी वजह से जब दु:ख आते हैं तब वे परमेश्वर को पुकारते हैं और परमेश्वर उन पर प्रेम रखकर उनके पास आते हैं। कुछ सदियों तक यह घटनाचक्र चलता रहता है। वो जब उसकी चरमसीमा पर पहुँच जाता है तब इस्राएली लोग शमूएल को, जो एक याजक और नबी था उसके पास एक राजा की माँग करते हैं।

लोगों ने राजा के तौर पर क्षाऊल की माँग की थी यह एक आपदा थी इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आप समझ सकते हैं की एक छिपे हुए इंसान को बहार निकालकर राजा बनाया जाये तो यह चुनाव अच्छा नहीं होता (1 शमूएल 10:22)। अंत मेँ परमेश्वर ने शाऊल के स्थान पर दाऊद का चुनाव किया था। दाऊद ने नैतिक रीति से भूल की थी, पर वो शाऊल से अच्छा था। उसने कभी भी परमेश्वर के साथ बेवफाई नहीं की थी और परमेश्वर के लिए उसका जो प्रेम था वो कभी कम नहीं हुआ था। उसने परमेश्वर के नैतिक नियमों को तोड़ा था, पर उसने पश्चाताप किया और कभी भी दूसरे देवों की उपासना नहीं की थी। इसलिए परमेश्वर ने दाऊद के साथ वाचा बांधी थी की उसके पुत्र इस्राएल मेँ कानूनी तौर पर राजा बन सकेंगे।

यह वाचा तो दाऊद के राजवंश का सर्जन करने की वाचा थी। परमेश्वर सिर्फ उसके पुत्रों को ही कानूनी तौर पर राजा बनने के लिए स्वीकार करनेवाले थे। दु:खद बात तो यह है की बाइबल मेँ बताए गए इस्राएल के इतिहास की बात मेँ बहुत ऐसे लोग आए जो राजा के तौर पर योग्य न होने के बावजूद दाऊद की पीढ़ी के होने की वजह से राजा बने थे। दाऊद के पुत्र दूसरे देवों के पिंछे चलने का चुनाव करके परमेश्वर के साथ बेवफाई करते थे, इसलिए परमेश्वर को उनमेँ से कुछ को दूर करना पड़ा। सिंहासन प्राप्त करनेवाले व्यक्ति का पारिवारिक इतिहास योग्य होने के साथ-साथ दाऊद के संतान के तौर पर उन्हें परमेश्वर पर प्रेम रखना था। इसलिए हरेक राजा को उसके पास परमेश्वर के नियम की एक प्रतिलिपि रखनी थी (व्यवस्थाविवरण 17:18; 2 राजा 11:12)। उसे वफादार विश्वासी व्यक्ति का श्रेष्ठ नमूना बनना था।

जमीन संपादित करने में और धनवानता में दाऊद का पुत्र सुलेमान इस्राएल के इतिहास का सबसे महान राजा था। पर दु:खद बात तो यह है की सच्चे परमेश्वर के प्रति उसकी वफादारी में अस्थिरता थी। उसने दूसरे देवों को बलिदान किया और राजकीय संबंध अच्छे बनाए रखने के लिए दूसरे देशों की लड़कियों से शादी की और इस प्रकार इस्राएल में दूसरे देवों की उपासना की शुरुआत हुई (1 राजा 11:1-8)। दूसरे शब्दों में कहें तो, सुलेमान ने आत्मिक बातों में समझौता करने की शुरुआत की और ऐसा विद्रोह किया, जिससे पूरा देश बिगड़ गया।

अंतिम विश्वासघात

सुलेमान की मृत्यु के बाद बारह कुलों में से दस कुलों ने उसके अनुगामी के विरुद्ध विद्रोह किया (1 राजा 11:41-12:240। इस्राएल का राज्य टूटे हुए घर के जैसा बन गया था। यह बात बहुत ही दु:खद है की बहुत राजाओं ने तो परमेश्वर के नियमों की प्रतिलिपि कभी भी देखी ही नहीं थी (2 राजा 22:8-13)।

विभाजित देशका उत्तरी भाग (यानि की राजकीय रीति से विद्रोह करनेवाले दस कुल) तुरंत ही आत्मिक रीति से भी विद्रोह करने लगे (1 राजा 12:25-33) थे। जिस परमेश्वर ने उन्हें यह देश दिया था और अलौकिक रीति से उन्हें वहाँ बसाया था उसके प्रति वफादार रहने की बजाय उन्होने तो परमेश्वर के साथ विश्वासघात किया। इससे जिन नबियों ने पूरे देश में घूमकर नबूवत की थी उन नबियोंने इन लोगों के आत्मिक विद्रोह की तुलना "वैश्यावृत्ति" और आत्मिक व्यभिचार के साथ की थी। वहाँ एकसमान संरूपता थी। देश के दक्षिण भाग में जो दो कुल थे वे भी धीरे धीरे आत्मिक विद्रोह करने लगे। धीमे धीमे किया गया पाप भी पाप ही है।

परमेश्वर का त्याग करने से कभी भी अच्छा नहीं होता। बाइबल एक जगह पर ऐसा कहता है की, "जान रखो की तुमको तुम्हारा पाप लगेगा" (गिनती 32:23)। परमेश्वर ने पहले जैसा किया था वैसे ही अपने लोगों को उनकी स्वतंत्र इच्छा का उपयोग करके उसकी परिस्थितियों की कीमत चुकाने दी। ई.सा. पूर्व 722 में देशका उत्तरीय भाग अश्शुरियों के द्वारा जीता गया। अगर आपने "धी लॉर्ड ऑफ धी रिंग्स" नामक चलचित्र देखा हो तो अश्शुरियों ने किए आक्रमणों को मोर्डोर ने किए हुए आक्रमण के जैसे सोचें।

मुझे यह रूपक पसंद है, क्यों की अश्शुरी लोग उनकी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने दस कुलों को पूरे जगत में तितर बितर कर दिया और उनके परिवारों को तोड़कर उनका सब लुंट लिया। लगभग 100 वर्ष के बाद (ई.सा. पूर्व 586 में) बाबेल के लोगों ने देश के दक्षिण भाग के दो कुलों को जीत लिया। सेंकड़ों इस्राएलियों को जबरदस्ती से बाबेल में गुलाम करके ले जाया गया था।

ईमानदारी से सोचें तो अगर इस समय में परमेश्वर अपने लोगों को भूल गए होते तो हम इस परिस्थिति को समझ सके होते। क्योंकि अब्राहम की मोत के बाद सेंकड़ों वर्षों तक बारबार उन्होंने परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह किया था। जिसके लिए वे लोग लायक थे उसकी समीक्षा को टालना कठिन है। पर परमेश्वर ऐसे कार्य नहीं करते हैं।

परमेश्वर ने *अभी भी* अपना एक मानवीय परिवार हो ऐसी इच्छा रखने का निर्णय किया था। पर उनके लोगों ने और दूसरे मनुष्यों ने भी उनके परिवार में फिरसे शामिल होने के लिए युक्तियों को बदलने की जरूरत थी। परमेशर ने अपने लोगों के साथ श्रेणीबद्ध वाचाएँ बांधी थी। पर ये लोग तो स्वाभाविक मनुष्य थे। वे अनुमानित नियमितता के साथ कई बार निष्फल हुए थे। बाकी के मनुष्यों को तो अलौकिक व्यक्तियों को (यानि की व्यवस्थाविवरण 32:8 के अनुसार "परमेश्वर के पुत्रों को") सोंपा गया था, और अब वे उनके सरजनहार और इस्राएल के परमेश्वर के शत्रु बने थे। परिस्थिति जटिल बन चूकी थी।

परमेश्वर के पास दो भाग में इन सभी बातों का ऊपाय था। जब परमेश्वर के परिवार के संतान बंधुवाई में गए थे तब परमेश्वर ने दो नबी (यशाया और यहेजकेल) को खड़ा किया था। उन्होंने लोगों को बताया था की परमेश्वर उन्हें भूल नहीं गए हैं और परमेश्वर अपने बच्चों

के साथ “नयी वाचा” बांधेंगे और उनका आत्मा उसका चिह्न होगा (यिर्मयाह 32:31-34; यहेजकेल 36:22-28)। नया दिन आ रहा था।

पर जो “नया दिन” आ रहा था वो कैसे परमेश्वर ने बांधी हुई पुरानी वाचा को दूर किए बगैर या उसे बदले बगैर सम्मान देगा इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता है। अधिकांश इस्राएलियों ने परमेश्वर का इंकार किया था और दूसरे देवों की उपासना की थी। उन्होंने परमेश्वर की वाचाओं को तोड़कर परमेश्वर के प्रति अपनी नापसंद बताई थी। उन्होंने परमेश्वर को दु:खी किया था। परमेश्वर अपने वचनों को सम्मान देना चाहते थे, पर उनके बहुत सारे बच्चे दूसरे देशों के देवों की उपासना करने की लालच में फंस गए थे।

यह तो मृत्यु का मार्ग था। याद रखो की अदन वाटिका में जो घटना घटी थी उसकी वजह से हरेक मनुष्य को मरना था और जब तक सच्चे परमेश्वर पर और उनके वचनों पर विश्वास न करें तब तक उन्हें अनन्त जीवन नहीं मिलनेवाला था। बहुत सारे इस्राएली इस बात को भूल गए थे। वे बहुत सारे देवों में से उनकी इच्छा के अनुसार के देव का चुनाव नहीं कर सकते थे। उन्हें तो सिर्फ एक ही सच्चे परमेश्वर पर विश्वास करना था और उस विश्वास में कायम रहना था।

इस्राएल में राजा आए तब परिस्थिति और भी बिगड़ गई। परमेश्वर ने दाऊद के साथ वाचा बांधी थी की उसके संतान सिंहासन के वारिस होंगे, पर उनमें से बहुत सारे तो परमेश्वर से दूर हो गए। परमेश्वर विश्वास की वफादारी की कमी को अनदेखा नहीं कर सके। वे अपनी वाचा को भी नहीं तोड़ सके। यह बात तो मानो ऐसा स्वीकार करने जैसी बात है की यह सब कार्य एक बुरा विचार या ईरादा था, पर सब कुछ जाननेवाले परमेश्वर का विचार या ईरादा बुरा नहीं हो सकता।

तो फिर जिन लोगों ने परमेश्वर का इंकार किया था उनके हक में अपने वचनों को परमेश्वर कैसे पूरा करेंगे? उन्हें नए ह्रदय की जरूरत थी। उन्हें मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए परमेश्वर की उपस्थिती की जरूरत थी। उन्हें तो सनातन राजा और परमेश्वर की परिपूर्णता बतानेवाला व्यक्ति बन सके ऐसे संतान की जरूरत थी। इस संतान को मनुष्यजाति से मृत्यु के श्राप को दूर करने की भी जरूरत थी। पर कैसे एक मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सके? उसे परमेश्वर होने की भी जरूरत है। यह सब कैसे संभव हो सकता है?

कोई एतराज नहीं.....

अध्याय 4

परमेश्वर उनके मानवीय परिवार के साथ जुड़े

मसीही लोग यीशु के आगमन के विषय में सब जानते हैं। वे जानते हैं की एक कुंवारी लड़की मरियम के द्वारा उनका चमत्कारिक रीति से जन्म हुआ था (मत्ती 1:18-25)। खास करके बहुत सारे लोग बड़े दिन के उत्सव कि सजावट करते समय बालक यीशु को चरनी में रखा हो ऐसा चित्रा देखने से परिचित है। यीशु ने मसीह के विषय में पुराने नियम में की गई बहुत सारी भविष्यवाणियों को पूरा किया था उसके विषय में एक पुराना पर बहुत प्रसिद्ध गीत बड़ा दिन मनाने के समय गाया जाता हैं।

यीशु ने क्रूस पर अपनी मृत्यु से ज्यादा भी कार्य किए हैं

यीशु ने इस जगत में जन्म लिया था इस बात का मुख्य भार अंत में तो क्रूस पर हुई उनकी मृत्यु पर ही दिया जाता है। यीशु हमारे पापों की माफी प्राप्त करने का कारण बने और उनकी वजह से ही हम परमेश्वर के परिवार में फिरसे प्रवेश पाते हैं (यूहन्ना 3:16)। दूसरे शब्दों में कहें, तो जब बहुत सारे मसीही लोग यीशु के विषय में विचार करते हैं तब वे क्रूस के बारेमें विचार करते है। उस समय वे एक बात को चूक जाते हैं।

क्रूस की बात की वजह से परमेश्वर यीशु के रूप में मनुष्य बनें यह वास्तविकता कहीं खो जाती है। बहुत सारे मसीहीयों को इस बात का ज्ञात नहीं होता की परमेश्वर को बहुत कारणों की वजह से मनुष्य बनना *जरूरी था* : पुराने नियम की हरेक वाचाओं को पूरी करने और पहले हमने जिस विद्रोह के बारे में बात की उसे उल्टा देने के लिए परमेश्वर का मनुष्य बनना जरूरी था।

परमेश्वर ने मनुष्यजाति का नाश करने का और पहले बनाई हुई अपनी योजना को छोड देने का इनकार किया था। इसलिए मनुष्य अब परमेश्वर के साथ सदाकाल तक रह सकेंगे यह आशा जीवंत रही है। यीशु मनुष्यों के पास आए, उन्हें माफी दी और उनके साथ संबंध बनाए रखा। वे परमेश्वर पर विश्वास रखें और परमेश्वर के साथ और दूसरे मनुष्यों के साथ मेल-मिलाप में रहें ऐसी परमेश्वर की इच्छा थी। पर परमेश्वर के बच्चों ने हर बार परमेश्वर का इन्कार किया। यह तो मानो ऐसा लगता है की, "परमेश्वर ने उन्हें ऐसा कहा की, तुम अभी भी मेरे साथ रह सकते हो इस बात पर विश्वास करो और तुम्हारा मन कहाँ है यह तुम्हारे वर्तन से बताओ" तब समस्या और भी विकट हो गई। इस मनोभाव को बताने के लिए परमेश्वर ने भटकी हुई भेड़ का द्रष्टांत दिया है (यशाया 53:6; मत्ती 9:36)। यह बात सच में सही है।

पिछले अध्याय में मैंने लिखा है की परमेश्वर के बच्चे परमेश्वर पर विश्वास कर सकें इसकी वजह से उन्हें नए ह्रदय की और परमेश्वर की उपस्थिती की जरूरत थी। उन्हें तो अपने आपसे और उन्हें प्रेम करनेवाला परमेश्वर जो अनन्त जीवन देता है, उसके बगैर का जो मक़ाम है उससे छूटने की जरूरत थी। परमेश्वर अपनी वाचाओं को सम्मान दे, मृत्यु के श्राप को उलटाकर उसे आशीष में बदल दें, और अपने लोगों को विश्वास में आगे बढने के लिए उपयोगी हो ऐसा एक मार्ग होना ही चाहिए।

इन सभी समयाओं के लिए परमेश्वर का उकेल महत्वपूर्ण था। परमेश्वर मनुष्य बनें। उन्होंने मनुष्य के साथ जुडने का निर्णय किया। *यहाँ हमारी कहानी में यीशु का प्रवेश होता है।* यीशु परमेश्वर होने के बावजूद भी इंसान बनें (यूहन्ना 1:1; 14-15; कुलुस्सियों 1:15-20; 2:6-9)। यीशु इन सभी रुकावटों को दूर करने का उपाय बन गए।

मनुष्यजाति के बदले मृत्यु को सहने के द्वारा ही मृत्यु के श्राप को उलटाकर आशीषरूप बनाया जाया जा सकता था। उसका अर्थ यह है की इस मृत्यु के बाद पुनरुत्थान होना ही चाहिए और सिर्फ परमेश्वर ही ऐसा कर सकते हैं। *अदन वाटिका में जो समस्या हुई थी उसका उपाय यीशु खुद थे।*

क्या आपको अब्राहम के साथ परमेश्वर ने जो वाचा बांधी थी वो याद है? परमेश्वर ने अलौकिक रीति से हस्तक्षेप करके अब्राहम और सारा को एक पुत्र दिया था। वो तो इस्राइल देश की शुरुआत थी। परमेश्वर ने अब्राहम को कहा था की उसके संतानों में से एक संतान बाबेल के सामने परमेश्वर ने जिन देशों को छोड दिया था उनको आशिषित करेगा। पर एक सामान्य मनुष्य यह कैसे कर सकता है? सिर्फ परमेश्वर ही अब्राहम के वफादार संतान के तौर पर इस्राएल के अलावा जो देश थे उन सभी देशों को आशिषित करने की वाचा के वचन को पूरा कर सकते हैं। *अब्राहम की वो संतान तो यीशु थे* (मत्ती 1:1; लूका 3:34)। छोड़ दिये गए देश ("अन्यजाति लोग") परमेश्वर के परिवार में फिरसे जुड़ सकें इसलिए जिस संतान का वचन दिया गया था वो संतान तो यीशु थे (गलतियों 3:16-18; 26:29)। *अब्राहम की वाचा को पूरी करने का उपाय तो यीशु थे।*

यीशु दाऊद कि संतान भी थे, इसलिए वे कानूनी तौर से राजा भी थे (मत्ती 1:1; लूका 1:32; रोमियों 1:3)। *यीशु दाऊद के साथ बांधी गई वाचा को पूरी करनेका उपाय थे।* यीशु कानूनी तौर पर इस वंश से थे और परमेश्वर को पूर्ण रूप से वफादार थे। उन्होंने कभी भी परमेश्वर की आज्ञा का अनादर नहीं किया था। उन्होंने कभी भी पाप नहीं किया था (2 कुरिन्थियों 5:12; ईब्रानियों 4:15; 1 पतरस 2:22)। उन्होंने कभी भी पाप नहीं किया था उस वास्तविकता का अर्थ यह है की वे परमेश्वर के नियम के हेतु का और सिनै पर्वत के आगे बंधी गई वाचा का सम्पूर्ण उदाहरण थे। यीशु परमेश्वर का स्वरूप है (2 कुरिंन्थियों 4:4; कुलुस्सियों 1:15)। कैसे परमेश्वर का स्वरूप में रूपांतरित होना है उसका उदाहरण तो यीशु है; हम यीशु के उदाहरण का अनुसरण करें ऐसी परमेश्वर की इच्छा है (1 पतरस 2:21)।

परमेश्वर मनुष्य बने इस विचार को समझना कठिन है। परमेश्वर मनुष्य बन सकते हैं, क्योंकि वे एक से ज्यादा व्यक्ति हैं। परमेश्वर तीन व्यक्ति हैं, जो उनके स्वभाव में पूर्ण रूप से एक ही हैं। बाइबल इन तीन व्यक्तियों की पहचान 'पिता', 'पुत्र' और 'पवित्र आत्मा' के तौर पर देता है। मसीही लोग उन्हें त्रिएक परमेश्वर कहते हैं। "परमेश्वर पुत्र" यीशु के रूप में मनुष्य बनें (यूहनना 1:1; 14-15)। "परमेश्वर मनुष्य बनें" इस कार्य के लिए धर्मशास्त्री लोग *अवतार* शब्द का प्रयोग करते हैं। परमेश्वर पिता अपनी वाचाओं को पूरा करने के लिए जिस मनुष्य पर भरोसा कर सकें वो मनुष्य तो यीशु ही थे।

मैंने पहले जो बात की वो शायद आपको याद होगी की, परमेश्वर "जगत की उत्पत्ति से पहले" जानते थे की मनुष्यजाति को अपने परिवार में वापिस लाने के लिए अपने पुत्र यीशु को भेज देंगे (इफिसियों 1:1-14; 1 पतरस 1:20)। अद्‌भूत बात तो यह है की परमेश्वर मानवीय परिवार प्राप्त कर सके इसलिए पुत्र यीशु मनुष्य बनने, दु:ख सहने और मृत्यु पाने के लिए तैयार थे। इस बातचीत का वर्णन नए नियम का एक शास्त्रभाग इस प्रकार करता है :

> इसी कारण वह जगत में आते समय कहता है, 'बलिदान और भेंट तू ने न चाही, पर मेरे लिए एक देह तैयार की.....तब मैं ने कहा, 'देख में आ गया हूँ, पवित्र शास्त्र में मेरे विषय में लिखा हुआ है, ताकि हे परमेश्वर, तेरी इच्छा पूरी करूँ।
>
> (इब्रानियों 10:5,7)

यह अच्छी बात है की परमेश्वर पुत्र यीशु के रूप में जन्म लेने के लिए तैयार था, क्योंकि सिर्फ वाचाएँ ही नहीं वरन अलौकिक विद्रोह की वजह से आए हुए दु:खों पर जय पाना यह सब जोखिम में था। हमें इस बात को समझने की जरूरत है की उस विद्रोह की वजह से परमेश्वर का मनुष्य बनाना जरूरी था – क्यों की परमेश्वर अपने मानवीय परिवार के साथ जुड़े उसके साथ उनके आत्मा के आने का मार्ग खुल गया।

पतन से ज्यादा समाधान

परमेश्वर यीशु के रूपमें इंसान बने इससे उनकी मृत्यु हो सकती थी। यह बात महत्वपूर्ण है की सिर्फ पुनरुत्थान के द्वारा ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। मृत्यु के बगैर आपको पुनरुत्थान प्राप्त नहीं हो सकता। यीशु खुद परमेश्वर भी थे, इसलिए उनके पास अपना प्राण फिर से लेने का अधिकार था (यूहन्ना 10:17-18)। यीशु की मृत्यु परमेश्वर की योजना थी, इसलिए परमेश्वर जगत की उत्पत्ति से पहले से जानते थे की यीशु को मृत्यु में से जिलाया जाएगा (प्रेरितों 2:23-24, 32; 3:15; 10:40; गलतियों 1:1)।

पुनरुत्थान की वजह से परमेश्वर के साथ हमारी जो अलगता थी उसे दूर किया जा चुका है। मृत्यु पर विजय प्राप्त किया जा चुका है। मृत्यु तो अदन वाटिका में किए गए विद्रोह की असर थी। सर्प (शैतान) ने आदम और हव्वा को प्रलोभन में डाला था उसके बाद जो समस्याएँ आई थी उसका उपाय किया गया था। जो कोई भी व्यक्ति ऐसा विश्वास करता है की यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान हमें हमारे पापों की माफी और अनंत जीवन प्रदान करता है वो व्यक्ति सदाकाल तक परमेश्वर के परिवार में रहेगा (रोमियों 4:16-25; 8:10-11; 10:9-10; 1 कुरिन्थियों 6:14)।

मृत्यु में से पुनरुत्थान पाने के बाद यीशु के लिए स्वर्ग में (चले जाना) जरूरी था। यीशु स्वर्ग में चले गए और परमेश्वर पिता के दाहिने हाथ पर सिंहासन पर बिराजमान है (मरकुस 6:19; यूहन्ना 20:17; कुलुस्सियों 3:1; इब्रानियों 12:2)। यह कार्य तो विश्वासियों में निवास करने के लिए पवित्र आत्मा को भेज देने का पूर्व संकेत था (प्रेरितों 2:33; रोमियों 8:9-11)। पवित्र आत्मा आ सके उसके लिए यीशु का जाना जरूरी था (यूहन्ना 14:25-26; 15:26; 16:7; लूका 24:49)।

पवित्र आत्मा का आगमन तो यिर्मयाह और यहजकेल ने किए गए नयी वाचा के वर्णन की परिपूर्णता थी (यिर्मयाह 31:31-34; यहजकेल 36:22-28)। पवित्र आत्मा दुष्टता पर विजय दिलाता है (गलतियों 5:16-17), और उसके कार्य यीशु से "बड़े" हैं (यूहन्ना 14:12)। यीशु जानते थे की उनकी मृत्यु और पुनरुत्थान नए नियम की परिपूर्णता की चाबी है। इसीलिए यीशु ने आखरी भोज के समय उनके शिष्यों को कहा था की उनका लहू "वाचा का लहू" है, जो लोगों के लिए बहाया जाता है (मत्ती 26:28; मरकुस 14:24; लूका 22:20)। यीशु स्वर्ग में चले गए और उनके आत्मा को पृथ्वी पर भेज दिया गया उसके बाद अब मानवजात दुष्टता के आगे लाचार नहीं है।

मानवीय परिवार की समस्याएँ, बार बार मिलनेवाली निष्फलताएँ और विद्रोह का उपाय तो यह था की यीशु को मनुष्य बनकर वाचा की सारी शरतों को पूरा करना था।

इस पुस्तक की शुरुआत में ही मैंने जो प्रश्न पूछा था उसे याद करो : परमेश्वर क्या चाहते हैं? परमेश्वर *आपको* चाहते हैं और सदाकाल के लिए आपको अपने पास रख सके इसलिए मृत्यु और पाप की समस्या का उपाय करने और मनुष्यजात के साथ उन्होंने जो वाचा बांधी थी उसे पूरा करने के लिए अपने पुत्र यीशु को भेज दिया है। अपना एक मानवीय परिवार हो ऐसी परमेश्वर की इच्छा है। दूसरा कोई मार्ग नहीं था। सुसंदेश को हमारे कार्यों के साथ कोई संबंध नहीं है, इसके बहुत कारण है – यानि की, हम हमारे प्रयत्नों के द्वारा परमेश्वर का प्रेम और उद्धार प्राप्त नहीं कर सकते हैं। बहुत से कारणो में से यह सबसे बड़ा कारण है। हमारे प्रयत्न पर्याप्त है ऐसा विचार तो पागलपन है। अगर हम हमारे कार्यों के द्वारा उद्धार पा सकते होते तो यीशु के आगमन, मृत्यु और पुनरुत्थान की कोई जरूरत ही ना होती।

शैतान और उसके मित्र : बुद्धू और मूर्ख?

इस बात में दूसरा एक मोड है, और में नहीं चाहता की आप उसे चूक जाएँ। मुझे याद है की मुझे एक से ज्यादा बार यह विचार आया था, और आप भी शायद ऐसा विचार कर रहे होंगे की अगर यीशु के मृत्यु और पुनरुत्थान की वजह से शैतान ने जो किया था उसकी असरों को उल्टा दिया गया है, जगत में जो दुष्टता थी उसे रोक दी गई है, और दूसरे देशों के चुनौतीपूर्ण देवों का अधिकार ले लिया गया है, तो फिर *क्यों शैतान और दूसरी अशुद्ध आत्माएँ यीशु को मार डाल सकें?* यह तो मूर्खतापूर्ण बात लगती है।

इसके विषय में सोचें। परमेश्वर की योजना में यीशु की जो मृत्यु थी वो उनकी योजना का एक भाग थी, क्यों की मृत्यु पर विजय पाकर पुनरुत्थान प्राप्त करने के लिए मरना जरूरी था। अगर यीशु का कार्य पूरा नहीं हुआ होता, तो यीशु परमेश्वर पिता के पास वापिस नहीं जा सके होते, और अगर ऐसा नहीं हुआ होता, तो दुष्टता को दूर करने के लिए पवित्र आत्मा आया न होता। अगर शैतान और अंधकार के दूसरे अधिकारियों ने यीशु को छोड दिया होता, तो *परमेश्वर की योजना निष्फल हो जाती।* क्या वे अलौकिक मूर्ख हैं?

इस मुद्दे के विषय में मैंने बहुत कुछ लिखा है। वो प्रभावशाली है। वास्तव में तो नया नियम इस प्रश्न का उत्तर देता है। यीशु ने जो सुसंदेश दिया था उसके विषय में बात करते हुए पौलूस प्रेरित कहता है की,

> हम परमेश्वर का वह गुप्त ज्ञान, भेद की रीति पर बताते हैं, जिसे परमेश्वर ने सनातन से हमारे महिमा के लिए ठहराया। जिसे इस संसार के हाकिमों में से किसी ने नहीं जाना, क्योंकी यदि वे जानते तो तेजोमय प्रभु को क्रूस पर न चढ़ाते। (2 कोरिन्थियों 2:7-8)

आत्मिक जगत के दुष्ट सदस्यों के लिए दूसरे कुछ शास्त्रभागों में पौलुस "अधिकारियों" इस शब्द का प्रयोग करता है (इफिसियों 3:10; 6:12; कुलुस्सियों 1:16)। मुद्दा तो सरल है की : *शैतान, अशुद्ध आत्माएँ और परमेश्वर के विरोधी बने उनके पुत्र परमेश्वर की योजना को जानते नहीं थे।* यीशु ने जब अपनी सेवकाई की शुरुआत की तब यीशु कौन है उसके विषय में वे निश्चित रूप से जानते थे। उन्होंने यीशु को "परमेश्वर का पुत्र" और "परमेश्वर का पवित्र" कहकर पुकारा था (मत्ती 4:1-10; 8:29; मरकुस 1:12-13, 21:24; 3:11; लूका 4:1-13, 31:37; 8:28)। पुराना नियम स्पष्ट रीति से बताता है की परमेश्वर अदन वाटिका की मूल योजना के अनुसार राज करने के लिए मानवीय परिवार की इच्छा रखते थे। शैतान और उसके मित्र यह अनुमान नहीं कर सकें की यीशु इस पृथ्वी पर अपनी योजना को पूरी करने के लिए आए थे। वे नहीं जानते थे की यीशु कैसे इस योजना को पूरी करेंगे। इसलिए उनकी द्रष्टि में यीशु को मार डालने का कार्य करना उन्हें तार्किक रूप से अच्छा लगा। पर यह कार्य तो सब बातों में महत्वपूर्ण बन गया। परमेश्वर ने उन्हें मूर्ख बनाया।

परमेश्वर अपने अलौकिक शत्रुओं से कितने ज्यादा बुद्धिमान हैं यह समझना बहुत ही सरल है। मगर हमें एक बात को भूलना नहीं है की परमेश्वर शैतान और अशुद्ध आत्माओं को मूर्ख दिखाने के लिए मनुष्यजात से नहीं जुड़े थे। पर परमेश्वर *आपको* अपने परिवार के सदस्य के रूप में चाहते हैं इसलिए उन्होंने यह कार्य किया था। परमेश्वर को दूसरे कोई भी हेतु की जरूरत नहीं थी। उनका हेतु तो आप हो।

पर इस बात में आगे बहुत कुछ है। यीशु ने उनका कार्य पूरा कर दिया। पर अब एक सरल मगर बहुत ही महत्वपूर्ण कारण के लिए पवित्र आत्मा के कार्य पर ध्यान देने की जरूरत है – यह बात तो हो सके इतने ज्यादा लोगों को परमेश्वर के परिवार के सदस्य बनाने के लिए परमेश्वर को उपयोगी होने के हमारे कार्य के साथ जुड़ी हुई बात है।

अध्याय 5

परमेश्वर अपने परिवार को आगे बढ़ाते हे

आगे के अध्याय में मैंने बताया है की पवित्र आत्मा का आगमन तो यिर्मयाह और यहजकेल ने नयी वाचा के विषय में जो भविष्यवाणी की थी उसकी परिपूर्णता है (यिर्मयाह 31:31-34; यहजकेल 36:22-28)। पवित्र आत्मा की सेवा हरेक विश्वासी व्यक्ति के जीवन में दुष्टता पर उनके विजय को संभव बनाती है। इसे परमेश्वर के पतित हुए पुत्रों के मुंह पर तमाचा मारा हो ऐसे सोचें। मगर दूसरे अलौकिक खलनायकों पर तो यह एक सीधा हमला है।

पवित्र आत्मा का आगमन तो जिन देशों को परमेश्वर ने दूसरे देवों को बाँट दिये थे उन देशों में रहनेवाले परमेश्वर के पुत्रों के आत्माओं के सामने आक्रमण करने के अभियान की शुरुआत है (व्यवस्थाविवरण 32:8)। वे अलौकिक व्यति तो परमेश्वर की सेवकाई करने में भूल से भरे हुए थे, भ्रष्ट हुए थे, और उन्होंने उनके अधिकार के नीचे जो लोग थे उनका दुरुपयोग किया था (भजनसंहिता 82)।

यीशु ये सारी बात जानते थे। नए नियम में जो पुस्तकें हैं उसे पढ़ते समय हम पुनरुत्थान के बाद की बातों के विषय में जो पुस्तकें हैं उसे हमारी आदत के अनुसार ध्यान से नहीं पढ़ते हैं (जैसे की प्रेरितों के काम और प्रकाशितवाकय)

अंत की शुरुआत

यीशु के स्वर्गारोहण के बाद पवित्र आत्मा के आगमन के समय की गिनती शुरू हो चुकी थी (यूहन्ना 14:26; 15:26; 16:7; लूका 24:49)। पुनरुत्थान पाये हुए यीशु जब पृथ्वी पर थे तब उन्होंने अपने चेलों को बताया था की उनके चले जाने के बाद पवित्र आत्मा का आगमन होगा:

> "और उनसे मिलकर आज्ञा दी, ''यरूशलेम को न छोड़ो, परंतु पिता की उस प्रतिज्ञा के पूरे होने की बाट जोहते रहो, जिसकी चर्चा तुम मुझ से सुन चुके हो। क्योंकि यूहन्ना ने तो पानी में बपतिस्मा दिया है परंतु थोड़े दिनों के बाद तुम पवित्र आत्मा से बपतिस्मा पाओगे.....परंतु जब पवित्र आत्मा तुम पर आयेगा तब तुम सामर्थ्य पाओगे; और यरुशलेम और सारे यहूदिया और सामरिया में, और पृथ्वी की छोर तक मेरे गवाह होगे। (प्रेरितों के काम 1:4-5; 8)

अगर आप प्रेरितों के काम कि पुस्तक पढ़ोगे तो यीशु किस बात का पूर्वकथन या भविष्यवाणी कर रहे थे उस बात को जानने के लिए ज्यादा लंबा समय नहीं लगेगा। यीशु स्वर्ग में चले गए (प्रेरितों के काम 1:9-11) उसके बाद हम देखते हैं कि दूसरे अध्याय में पवित्र आत्मा पराक्रम के साथ उतर आता है।

> जब पिन्तेकुस्त का दिन आया, तो वे सब एक जगत इकट्ठे थे। एकाएक आकाश से बड़ी आँधी कि सी सनसनाहट का शब्द हुआ, और उससे सारा घर जहां वे बैठे थे, गूँज गया। और उन्हें आग कि सी जीभें फटती हुई दिखाई दीं और उनमें से हर एक पर आ ठहरी। वे सब पवित्र आत्मा से भर गए, और जिस प्रकार आत्मा ने उन्हें बोलने की सामर्थ्य दी, वे अन्य अन्य भाषा बोलने लगे। (प्रेरितों के काम 2:1-4)।

उसके बाद पवित्र आत्मा ने यीशु के चेलों को अन्य भाषाओं में बोलने कि सामर्थ्य दी उसके विषय में हम जानते हैं। वे लोग पूरे विश्व के यहूदी लोगों को यीशु के मृत्यु और पुनरुत्थान कि बात कहने लगे। इस्राएली लोग दूसरे देशों में "यहूदी" के तौर पर जाने जाते थे। और पुराने नियम में बंधुवाई का जो समय आया उसके बाद वे लोग पूरे विश्व में तितर बितर हो चूके थे। जो यहूदी लोगों ने यीशु के चेलों को अपनी भाषा में बोलते हुए सुना वे यहूदी लोग पुरानी वाचा के इस्राएली संतान थे। वे इस्राएलियों के धार्मिक केलेन्डर के अनुसार जो पवित्र पर्व थे उनमें से एक पर्व मनाने के लिए यरुशलेम में आए थे।

यरुशलेम में जो लोगों ने यीशु के चेलों को अन्य भाषाओं में बोलते हुए सुना था उन्होंने उनके लिए कहा की वे लोग मदिरा के नशे में चूर हैं। ये लोग अचानक ही दूसरी भाषाओं में बोलने लगे वो संभव नहीं लगता था। तब प्रेरित पतरस ने उनको इस बात का मतलब समझाया था। ईमानदारी से बात करें तो पतरस ने उनको पवित्र आत्मा प्राप्त करने कि बात भी कि थी।

> ''तब पतरस उन ग्यारह के साथ खड़ा हुआ और ऊँचे शब्द से कहने लगा, ''हे यहूदियों और हे यरुशलेम के सब रहनेवालों, यह जान लो, और कान लगाकर मेरी बातें सुनो। जैसा तुम समझ रहे हो, ये लोग नशे में नहीं है, क्योंकि अभी तो पहर ही दिन चढ़ा है। परंतु यह वह बात है, जो योएल भविष्यद्वकता के द्वारा कही गई थी: परमेश्वर कहता है, कि अंत के दिनों में ऐसा होगा कि में अपना आत्मा सब मनुष्यों पर ऊँडेलूँगा, और तुम्हारे बेटे और तुम्हारे बेटियाँ भविष्यद्वाणी करेंगी, और तुम्हारे जवान दर्शन देखेंगे, और तुम्हारे पुरनिए स्वप्न देखेंगे। वरन में अपने दासों और अपनी दासियों पर भी उन दिनों में अपने आत्मा में से ऊँडेलूँगा, और वे भविष्यद्वाणी करेंगे। और में ऊपर आकाश में अद्द्भूत काम और नीचे धरती पर चिह्न, अर्थात लहू और आग और धूएँ का बादल दिखाऊँगा। .....और जो कोई प्रभु का नाम लेगा, वह उद्धार पाएगा। ''हे इस्राएलियों ये बातें सुनो : यीशु नासरी एक मनुष्य था जिसका परमेश्वर कि और से होने का प्रमाण उन सामर्थ्य के कामों और आश्चर्य के कामों और चिह्नों से प्रगट है, जो परमेश्वर ने तुम्हारे बीच उसके द्वारा कर दिखाए जिसे तुम आप ही जानते हो। उसी यीशु को, जो परमेश्वर कि ठहराई हुई योजना और पूर्व ज्ञान के अनुसार पकड़वाया गया, तुम ने अधर्मियों के हाथ से क्रूस पर चढ़वाकर मार डाला। परन्तु उसी को परमेश्वर ने मृत्यु के बन्धनों से छुड़ाकर जिलाया; क्योंकि यह अनहोना था कि वह उसके वश में रहता। ...इस प्रकार परमेश्वर के दाहिने हाथ से सर्वोच्च पद पाकर, और पिता से वह पवित्र आत्मा प्राप्त करके जिसकी प्रतिज्ञा कि गई थी, उसने यह उंडेल दिया है जो तुम देखते और सुनते हो। (प्रेरितों के काम 2:14-19; 21-24; 33)

लोगों ने अपनी आंखो से देखा था और अपने कानों से सुना था उसके विषय में पतरस कह रहा था कि वो तो परमेश्वर के पवित्र आत्मा के आगमन कि वजह से हुआ चमत्कार है। जो घटनाएँ घट रही थी, यानि कि मसीह आए, उनको मार डाला गया और मृत्यु में से सजीवन हुए और सबको उन पर विश्वास करने कि जरूरत है, इस बात को कहने के लिए परमेश्वर ने अपना पवित्र आत्मा भेज दिया था। पतरस ने जो समझ दी थी उसका परिणाम अद्द्भूत था। तीन हजार लोगों ने माफी के लिए ''परमेश्वर को पुकारा'' और उद्धार पाये (प्रेरितों के काम 2:41)।

सामान्य रीति से प्रचारक क्रूस के बारे में बात करते हुए आगे बढ़े या इससे पहले कि बात करे उसका मुख्य मुद्दा यह है। ये एक अच्छा मुद्दा है, क्यों कि क्रूस और पुनरुत्थान के लिए यह क्षण आ चुकी थी। पर हम फिरसे इस बात का सबसे महत्व का मुद्दा चूक जाते हैं।

अलौकिक घुसपैठ

याद रखो की प्रेरितों के काम के दूसरे अध्याय में जो घटना घटी वो तो पवित्र आत्मा के आगमन की बात हैं। पवित्र आत्मा का आगमन तो नए नियम की निर्णायक बात थी – परमेश्वर मनुष्यजात को नए वचन दे रहे थे। बहुत से मसीही विश्वासी ये नहीं जानते की इस बात का अर्थ यह था की परमेश्वर उनका इन्कार करनेवाले यहूदियों पर ही नहीं, वरन जिन देशों को उन्होंने बाबेल के आगे छोड दिया था उन देशों पर भी अपना हक जमाने के आत्मिक युद्ध की शुरुआत कर रहे थे। *परमेश्वर अपने परिवार को आगे बढ़ा रहे थे,* और उनके बच्चे कहाँ रहते थे उससे उनको कोई फर्क नहीं पड़ता था। परमेश्वर उन्हें प्राप्त करना चाहते थे इसलिए उन्हें बुला रहे थे।

प्रेरितों के काम का जो दूसरा अध्याय हमने अभी अभी पढ़ा है वो बताता है की पवित्र आत्मा आँधी और अग्नि के साथ उतार आया था (प्रेरितों के काम 2:2-3)। अग्नि और "आँधी" तो पूराने नियम में परमेश्वर की उपस्थिती के दर्शनों की सामान्य बात है (निर्गमन 13:21-22; यहजकेल 1:4; 13, 27)। परमेश्वर "आँधी में" प्रगट हुए थे (यशाया 6:4; यहजकेल 1:4; अय्यूब 38:1; 40:6)। जिन यहूदियों ने संदेश सुना और पवित्र आत्मा को आते हुए अपनी नजरों से देखा वे जानते थे की उद्धार का दिन आया है।

इस द्रष्य में क्या हुआ उसके विषय में सोचो। जिनके पूर्वज दूसरे देशों में तितर बितर होने की उसकी वजह से वे लोग दूसरे देशों में रहते थे ऐसे तीन हजार यहूदी लोग यरूशलेम में धार्मिक पर्व मनाने के लिए आए थे। उन्होंने पवित्र आत्मा के आगमन की गवाही दी और यीशु को, जो मसीहा है और उन्होंने जो कार्य किए थे उसके विषय में बात सुनी थी। उन्हों ने यीशु पर विश्वास किया था। वे यीशु के चेले यानि मसीही बने थे। आपको क्या लगता है, इसके बाद उन्हों ने क्या किया था?

वे अपने घर वापिस लौटे थे।

ये क्यों महत्वपूर्ण है? क्यों की जिन देशों को छोड दिया गया था वो देशों में अब तीन हजार सुसमाचार प्रचारक पहोंचे थे। वे गुप्त जासूसों के जैसे दूसरे देवों के अधिकार के क्षेत्र में जो प्रदेश थे वहाँ पहोंचे थे। वे तो परमेश्वर के मानवीय परिवार के सदस्यों की संख्या में वृद्धि करनेवाले लोग थे। वे तो इस आंदोलन की पहली लहर बने थे। उनका कार्य क्या था? उनका कार्य भी यीशु ने अपने चेलों को जो कार्य सोंपा था वही कार्य था – यानि की महान आदेश।

मसीही लोग इस वचन को अच्छी रीति से जानते हैं:

> इसलिए तुम जाओ, सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ; और उन्हें पिता, और पुत्र, और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो, और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ : और देखो, में जगत के अन्त तक सदा तुम्हारे संग हूँ। (मत्ती 28:19-20)

मगर फिर भी एक बात चूक गए। यह तो महान आदेश की बात की। पर 18वां पद बताना तो रह गया। कई बार जब सुसंदेश प्रचार के मिशन की बात की जाती है तब लोग इस पद के विषय में बात करना चूक जाते हैं। यहाँ यीशु ने जो बात बताई है वो महत्वपूर्ण है, इसलिए उन अक्षरों को घट्ट किया गया है :

> यीशु ने उनके पास आकार कहा, **"स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है।** इसलिए तुम जाओ, सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ; और उन्हें पिता, और पुत्र, और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो, और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ : और देखो, में जगत के अन्त तक सदा तुम्हारे संग हूँ। (मत्ती 28:19-20)

क्या आपको एक बात को समझ पाए? यीशु के पास स्वर्ग और *पृथ्वी* की सभी बातों पर अधिकार है। आकाश में जो अधिकार है इस बात को समझना सरल है। यीशु स्वर्ग में चढ़ गए और पिता के दाहिने हाथ पर विद्यमान है (कुलुस्सियों 3:1; इब्रानियों 12:2)। मगर "पृथ्वी पर" अधिकार होने का क्या अर्थ है? इस बात की सरलता से अवहेलना की जाती है। पुनरुत्थान के बाद यीशु का स्वर्गारोहण हुआ वो तो पृथ्वी पर उस समय जिनका अधिकार था उनके अधिकार के अंत का चिह्न है। वे कौन थे? वे तो परमेश्वर के पतित हुए पुत्र थे और परमेश्वर ने जो देशों को छोड दिया था और उन्हें बाँट दिया था उन देशों पर नियुक्त किए गए थे (व्यवस्थविवरण 32:8)।

अब यहाँ तुम्हारा कोई स्थान नहीं

यीशु का पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण इस बात को सूचित करता था की परमेश्वर के आगे विद्रोह करनेवाले उनके पुत्रों का अधिकार ले लिया जा चूका है। अब उनके पास दूसरे देशों के लोगों के ऊपर कानूनी तौर पर कोई अधिकार नहीं है। मसीह यीशु अब्राहम और दाऊद की संतान थे फिर भी उद्धार सिर्फ इस्राएलियों (यानि की यहूदियों) के लिए ही नहीं है। यीशु हरेक लोगों के लिए मसीह हैं और

अधिकारिक रूप से हरेक देशों के प्रभु हैं। यीशु का पुनरुत्थान, स्वर्गारोहण और पवित्र आत्मा का आगमन परमेश्वर के पतित हुए पुत्रों के अधिकार के अंत की शुरुआत को दर्शानेवाला चिह्न है। उन्होंने अपना अधिकार खो दिया है।

इसलिए नए नियम में यीशु के पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण की बात को अंधकार के अलौकिक अधिकारियों के पराजय की बात के साथ जोड़ा गया है। जब परमेश्वर ने "यीशु को मरे हुओं में से जिलाया" (कुलुस्सियों 1:2) तब हमारे पापों की माफी दी गई थी (कुलुस्सियों 2:13-14) उतना ही नहीं पर यीशु ने "प्रधानताओं और अधिकारों को ऊपर से उतारकर उनका खुल्लमखुल्ला तमाशा बनाया" (कुलुस्सियों 2:15)। पौलूस ने परमेश्वर के पतित हुए अलौकिक पुत्रों के लिए "प्रधानताओं और अधिकारों" यह शब्दों का प्रयोग किया है, वे तो पुराने नियम के समय से दूसरे देशों के दुष्ट देवता बने थे (रोमियों 8:38; 1 कुरिन्थियों 15:24; एफिसियों 1:21; 2:2; 3:10; 6:12; कुलुस्सियों 1:13)

"प्रधानता और अधिकार" शब्द तो पराजित किए गए अंधकार के अधिकारियों का वर्णन करने के लिए किए गए पौलूस के मनपसंद शब्द हैं। यीशु मृत्यु में से सजीवन होने के बाद "स्वर्गदूत और अधिकारी और सामर्थी यीशु को अधीन किए गए हैं (1 पतरस 3:22)। जब परमेश्वर ने यीशु को सजीवन किया तब "सब प्रकार की प्रधानता, और अधिकार, और सामर्थ्य, और प्रभुता के, और हर एक नाम के ऊपर, जो न केवल इस लोक में पर आनेवाले लोक में भी लिया जाएगा, बैठाया" (इफिसियों 1:20-21)। "उस समय वह सारी प्रधानता, और सारा अधिकार, और सामर्थ्य का अन्त करके राज्य को परमेश्वर पिता के हाथ में सौंप देगा" (1 कुरिन्थियों 15:24)।

पौलूस ने पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण को दूसरे देशों पर नियुक्त किए गए परमेश्वर के पतित पुत्रों के अधिकार के अन्त की शुरुआत के चिह्न के रूप में देखा था। उसने विदेशियों के, यानि छोड दिये गए देशों के लोगों के उद्धार को इस बात के साथ जोड़ा है उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। पुनरुत्थान पाये हुए यीशु और पवित्र आत्मा विदेशियों को उनको गुलाम बनानेवाले और उनका दुरुपयोग करनेवाले अंधकार के अधिकारियों से छुड़ाएंगे (भाजनसनहिता 82:2-5)।

इस बात को याद करो की बाबेल के आगे देशों को बाँटने के बात तुरंत ही परमेश्वर अब्राहम के आगे प्रगट हुए थे। उन्होंने अब्राहम से कहा था की उसके संतान के द्वारा सभी देशों के लोग आशीषित होंगे। विदेशियों का प्रेरित होने के तौर पर पौलुस इस वचन को अच्छी रीति से जानता था। उसने लिखा की अन्यजाति लोग भी परमेश्वर की दया के लिए परमेश्वर का महिमा प्रगट करे इसलिए परमेश्वर ने अब्राहम और उसके संतानों को जो वचन दिये गए थे उसे "यीशु ने सही ठहराया है" (रोमियों 15:8-9)।

पौलूस यह बात करके रुक नहीं जाता है। परमेश्वर ने अन्यजाति देशों के लिए कभी भी हिम्मत नहीं खोई थी यह बताने के लिए पौलूस पुराने नियम के वचनों का संदर्भ देता है। परमेश्वर उन्हें भी अपने परिवार के तौर पर देखना चाहते थे। पौलूस जानता था की पुराने नियम में मसीह को "यिशै की जड़" कहा गया है (यिशै तो दाऊद का पिता था) और वो मसीह "विदेशियों पर अधिकार प्राप्त करेंगे और अन्यजाति लोग उसमें आशा पाएंगे" (यशाया 11:10)। पौलूस जानता था की छोड दिये गए देश भी एक दिन सच्चे परमेश्वर की उपासना करेंगे (भजनसंहिता 117:1)।

जब पवित्र आत्मा उतर आया और 3000 लोगों ने यीशु पर विश्वास किया तब यह कार्यक्रम – यानि की आत्मिक युद्ध के इस आंदोलन की शुरुआत हुई थी (प्रेरितों के काम 2)। ये नए विश्वासी उनके देशों में वापिस गए थे। अब अलौकिक शत्रु प्रधानताओं के अधिकार के नीचे जो देश थे उन देशों में भी यीशु के सुसंदेश की घुसपैठ हो चूकी थी। बाइबल इस घटना को "परमेश्वर के राज्य की वृद्धि" बताता है। जब लोग उन्हें अनन्त जीवन न दे सकनेवाले भ्रष्ट और दुष्ट देवों की और से फिरकर परमेश्वर के परिवार के सदस्य बनते हैं तब परमेश्वर के राज्य की वृद्धि होती है। एक राज्य का पतन होता है और दूसरे राज्य की वृद्धि होती है।

इसलिए कहा जाता है की परमेश्वर का राज्य यहाँ है...पर पूर्ण रीति से नहीं। परमेश्वर अपने बच्चों पर प्रेम रखकर उनको अपने परिवार के सदस्य बनाने के कार्य को एक पल के लिए भी रोकते नहीं है। अपने परिवार की वृद्धि करने के लिए हरेक परिस्थिति में उनका अद्रश्य हाथ हंमेशा उनके बच्चों के साथ रहकर उन्हें बल और सामर्थ्य देता है। एक दिन परमेश्वर की योजना उसकी चरमसीमा पर पहोंचेगी। उनकी योजना का पूरा चक्र पूरा होगा। परमेश्वर के मन में पहले से जो योजना थी उसके अनुसार ही कहानी का अन्त होगा।

अध्याय 6

परमेश्वर सदा अपने परिवार के साथ है

मैंने कुछ स्पष्ट बिन्दुओं की समझ देते हुए पिछले अध्याय का अन्त किया है। मसीह ने पुनरुत्थान प्राप्त किया है।उन्होंने क्रूस पर जो कार्य किया और उसके बाद पुनरुत्थान पाए उस कार्यो पर विश्वास करनेवाले हरेक व्यक्ति अनन्त जीवन पाते हैं। पर हम मसीह के राज्य के सदस्य हैं (कुलुस्सियों 1:13), वो राज्य अभी भी उसके पूर्ण रूप में नहीं आया है।

ऐसे ही शैतान और परमेश्वर के पतित हुए पुत्रों के पराजय और विनाश की बात भी उतनी ही सही है। उसकी प्रक्रिया *शुरू* हो चूकी है, पर उसका *अन्त* अभी तक नहीं हुआ है। परमेश्वर के राज्य के कोई भी सदस्य के ऊपर शैतान के पास कोई दावा या अधिकार नहीं है, और मृत्यु पर भी कोई अधिकार नहीं है। हम यीशु के द्वारा परमेश्वर के संतान बन चुके हैं, और यीशु ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है इसलिए, हमें यीशु और परमेश्वर पिता के साथ अनन्त जीवन के लिए सजीवन किया जाएगा (रोमियों 6:8-9; रोमियों 8:11; 1 कुरिन्थियों 6:14; 15:42-49)। "आकाश के अधिकार के हाकिम...जो अब भी आज्ञा न माननेवालों में कार्य करता है" (इफिसियों 2:2) वो अभी भी कार्य करता है।

अंधकार के हाकिम का अधिकार ले लिया गया है, पर वे अभी तक अधीन नहीं हुए है। वे हारे हुए हैं फिर भी अभी भी युद्ध लड़ रहे हैं। जो कोई व्यक्ति यीशु के द्वारा उद्धार प्राप्त करता है उसे "अंधकार के वश से छुड़ाकर परमेश्वर के प्रिय पुत्र के राज्य में प्रवेश करवाया गया है" (कुलुस्सियों 1:13)। परमेश्वर का राज्य वृद्धि प्राप्त कर रहा है और अंधकार का राज्य घटता जाता है।

भविष्य की और लक्ष रखने के बजाए जगत के दु:खों और दुष्टता में खो जाना सरल है। कईबार यह याद रखना कठिन बन जाता है की यीशु ने "अपने आप को हमारे पापों के लिए दे दिया, ताकि हमारे परमेश्वर और पिता की इच्छा के अनुसार हमें इस बुरे संसार से छुड़ाए।" (गलतियों 1:4)

> बाइबल इस दुविधा का इन्कार नहीं करता है। बाइबल तो ईमानदारी के विषय में बात करता है। "क्यों की में समझता हूँ की इस समय के दु:ख और क्लेश उस महिमा के सामने, जो हम पर प्रगट होनेवाली है, कुछ भी नहीं है। क्यों की सृष्टि बड़ी आशाभरी द्रष्टि से परमेश्वर के पुत्रों के प्रगट होने की बाट जोह रही है। क्योंकि सृष्टि अपनी इच्छा से नहीं पर अधीन करनेवाले की और से, व्यर्थता के अधीन इस आशा से की गई की सृष्टि भी आप ही विनाश के दासत्व से छुटकारा पाकर, परमेश्वर की सन्तानों की महिमा की स्वतन्त्रता प्राप्त करेगी" (रोमियों 8:18-21)।

कहानी का आश्चर्यकारक बिन्दु

मैं आपका ध्यान इस बात के अद्‌भुत अंत पर खींचना चाहता हूँ। आप जानते हो की हरेक ऐतिहासिक महान कहानी का अंत यादगार होता है। बाबेल की बात भी इससे अलग नहीं है। (अगर आप वीणा और बादलों की अपेक्षा रखते हो तो आप निराश होंगे।)

हम हमारी अपनी विचारधारा के अनुसार बाइबल की कहानी के अंत के कार्य की प्रक्रिया पर विचार करते हैं। उदाहरण के तौर पर, हम मृत्यु नहीं पर अनन्त जीवन प्राप्त करेंगे। यह बात रोमांचक लगती है, पर "अनन्त जीवन" के बारे में ज्यादा कहा गया नहीं है। जो वर्णन किया गया है वो तो गुणवत्ता के बारे में नहीं वरन सिर्फ समयकाल का ही वर्णन है।

जब हम कहानी के अंत के तौर पर हमारे मनों में नयी वैश्विक अदन वाटिका में जो जीवन होगा उसके विषय में विचार करेंगे तब हमें अनन्त जीवन की गुणवत्ता दिखाई देगी। बाइबल का आखरी पुस्तक प्रकाशितवाक्य अदन वाटिका की कल्पना के साथ कहानी का अंत करता है (प्रकाशितवाक्य 21 और 22 अध्याय)। वहाँ परमेश्वर है। स्वर्ग पृथ्वी पर उतार आया है। यीशु वहाँ है। वहाँ जीवन का वृक्ष है। यह अदन वाटिका तो मूल अदन वाटिका से अच्छी है। दुष्टता को दूर किया गया है। अब जगत में विद्रोह नहीं होगा। पूरा जगत पूर्ण रीति से श्रेष्ठ बनाया गया है। पौधे, प्राणी और मनुष्यों में मृत्यु या रोग नहीं है। कोई शिकार या हिंसा नहीं होगी। यह तो हमने जिसकी कभी भी अपेक्षा नहीं की थी ऐसा जीवन होगा।

"अदन वाटिका के बारे में यह द्रष्टिकोण" हमें बाइबल जिस बात की चरमसीमा पर भार देता है उसकी और ले जाता है। मैंने पहले बताए गए रोमियों के 8 अध्याय का शास्त्रभाग हमारी सोच को परमेश्वर की योजना की चोटी की पराकाष्ठा यानि की : परमेश्वर के पुत्रों के प्रगट होने की और...परमेश्वर के संतानों के महिमा" की बात के साथ एकरूप करती है। हाँ, सृष्टि खुद नयी होने की इच्छा रखती है, पर यह छुटकारा परमेश्वर के मानवीय परिवार के महिमावान होने के साथ जुड़ा हुआ है।

दूसरे शब्दों में कहें तो परमेश्वर जो कार्य कर रहें हैं उसका अंत हमारे द्वारा होगा। उनके बच्चे होने के तौर पर *हमारी पदवी* हमेशा के लिए उनकी उपस्थिति में रहेगी और यही तो बाइबल की कहानी का मुख्य भाग है। हम जहां रहेंगे उसका द्रश्य अद्‌भुत है उसमें कोई संदेह नहीं है। प्रकाशितवाक्य के पुस्तक में बताई गई नयी अदन वाटिका का अंतिम दर्शन हमें इस बात को बताता है:

> फिर मैं ने नए आकाश और नयी पृथ्वी को देखा, क्योंकि पहला आकाश और पहली पृथ्वी जाती रही थी, और समुद्र भी न रहा। फिर मैं ने पवित्र नगर नए यरूशलेम को स्वर्ग से परमेश्वर के पास से उतरते देखा। वह उस दुल्हिन के समान थी जो अपने पति के लिए सिंगार किए हो। फिर मैं ने सिंहासन में से किसी को ऊँचे शब्द से यह कहते हुए सुना, "**देख, परमेश्वर का डेरा मनुष्यों के बीच में है। वह उनके साथ डेरा करेगा, और वे उसके लोग होंगे, और परमेश्वर आप उनके साथ रहेगा और उनका परमेश्वर होगा।** प्रकाशितवाकय 21:1-3

सनातन पहचान

"परमेश्वर के पुत्रों का प्रगट होना....परमेश्वर के पुत्र का महिमा" यह शब्द हमें बताते हैं की एक दिन हमें रूपांतरित करके यीशु के जैसे बनाया जाएगा। प्रेरित यूहन्ना ने कहा है की, "हे प्रियों, अब हम परमेश्वर की सन्तान हैं, और अभी तक यह प्रगट नहीं हुआ की हम क्या कुछ होंगे। इतना जानते हैं की जब वह प्रगट होगा तो हम उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है" (1 यूहन्ना 3:2)। दूसरे दो शास्त्रभागों में यही विचार दूसरी रीति से बताया गया है :

> क्यों की जिन्हें उसने पहले से जान लिया है उन्हें पहले से ठहराया भी है की उसके पुत्र के स्वरूप में हों, ताकि वह बहुत भाइयों में पहलौठा ठहरे। (रोमियों 8:29)
>
> पर हमारा स्वदेश स्वर्ग पर है; और हम एक उद्धारकर्ता प्रभु यीशु मसीह के वहाँ से आने की बाट जोह रहे हैं। वह अपनी शक्ति के उस प्रभाव के अनुसार जिसके द्वारा वह सब वस्तुओं को अपने वश में कर सकता है, हमारी दिन-हिन देह का रूप बदलकर अपनी महिमा की देह के अनुकूल बना देगा। (फिलिप्पियों 3:20-21)

हमारा मक़ाम तो परमेश्वर के पूर्ण स्वरूप और प्रतिमा यानि की यीशु जैसा बनना है। उसकी प्रक्रिया शुरू हो चुकी है : "परंतु जब हम सब के उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रगट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है, हम उसी तेजस्वी रूप में अंश अंश करके बदलते जाते हैं" (2 कुरिन्थियों 3:18)। बाइबल पुनरुत्थान और रूपांतर के साथ हमारी कहानी का अंत करता है

। हमें अनन्त जीवन के लिए उठाया गया है और पुनरुत्थान पाने के बाद जैसा महिमावान शरीर यीशु का था ऐसा महिमावान शरीर हमें भी दिया जाएगा। पौलूस उसे "स्वर्गीय शरीर" कहता है (1 कुरिन्थियों 15:35-58)।

हमारा आखरी मक़ाम और महिमावान होने के विषय में मेरा पसंदीदा शास्त्रभाग थोड़ा ज्यादा असपष्ट है। वो तो इब्रानीयों की पत्री में बताया गया वो द्रश्य है जहां यीशु हमें परमेश्वर का, और परमेश्वर को हमारा परिचय करवाता हैं। यीशु परमेश्वर के आगे और परमेश्वर के स्वर्गीय पुत्रों के आगे खड़े रहते हैं। यीशु हिम्मत से अंगीकार करते हैं की वे हमें अपने परिवार के सदस्यों के तौर पर अपने भाई कहने से नहीं लजाता (इब्रानीयों 2:11), और उसके बाद परमेश्वर को और अपने परिवार के अलौकिक सदस्यों को कहते हैं की, "में तेरा नाम अपने भाइयों को सुनाऊँगा; सभा के बीच में मैं तेरा भजन गाऊँगा। और फिर यह, ''मैं उस पर भरोसा रखूँगा। ''और फिर यह, 'देख, मैं उन लड़कों सहित जिसे परमेश्वर ने मुझे दिए'।" (इब्रानीयों 2:12-13)

आप परमेश्वर के परिवार के कानूनी तौर से और हमेशा के लिए सदस्य बनें यह आपका आखरी मक़ाम है। अंत में, आप परमेश्वर के परिवार के सदस्य रहेंगे। परमेश्वर ने शुरुआत से ऐसी इच्छा राखी थी। इसलिए पूरी सृष्टि परमेश्वर के पुत्रों के प्रगट होने की बाट जोहती है।

अनन्तकालीन सहभागिता

क्या आप ने नयी सृष्टि में (स्वर्ग में) जीवन कैसा होगा उसके विषय में कभी बात की है? मैं ने बहुत लोगों को सदाकाल स्तुति-आराधना की सभा, या तो यीशु के साथ कभी न खत्म हो ऐसे प्रश्न और उसके उत्तर, या तो महिमावान कलिसिया एकठ्ठि होगी ऐसे वर्णन करते हुए सुना है। (आखिर में जो बात है वो मेरे जैसे अन्तर्मुखी लोगों को डरा देती है।)

हम सम्पूर्ण की गई स्वर्गरूपी अदन वाटिका में हमारा जीवन कैसा होगा उसके विषय में बहुत सारी कल्पनाएँ करते हैं, पर बाइबल उस अनुभव के विषय में ज्यादा नहीं बताता है। वो जो कुछ कहता है वो सिर्फ ऊपर बताए गए अनुमानों के जैसी ही बात करता है की, "जो जय पाए और मेरे कामों के अनुसार अन्त तक करता रहे, मैं उसे जाती जाती के लोगों पर अधिकार दूँगा (प्रकाशितवाकय 3:21)। एक दिन हम "स्वर्गदूतों का न्याय करेंगे" (1 कुरिन्थियों 6:3)।

यह वाक्यों का क्या अर्थ है? हम इस प्रश्न को पुछकर शुरुआत कर सकते हैं की *वर्तमान में* देशों के ऊपर कौन राज कर रहा है? उसका उत्तर है - परमेश्वर ने बाबेल के समय पर अपने पुत्रों को देश बाँट दिये थे वे पतित हुए परमेश्वर के पुत्र। दूसरे शब्दों में कहें तो अभी तक सब देश (या तो अधिकांश देशों के ऊपर) परमेश्वर ने पूरी रीति से दावा नहीं किया है। परमेश्वर के राज्य की वृद्धि तो क्रमानुसार होनेवाली प्रक्रिया है, उसके विषय में हमने देखा है की, "उसकी शुरुआत तो हो चुकी है, पर उसकी प्रक्रिया अभी तक पूरी नहीं हुई है। "जब वो प्रक्रिया पूरी होगी तब विश्वासी लोग "स्वर्गदूतों का न्याय करेंगे" – हम परमेश्वर के पुत्रों का न्याय करेंगे और उनकी पदवी प्राप्त करेंगे। हम हमारे राजा और भाई – यीशु के साथ देशों के ऊपर राज करेंगे।

जब भी मैं इस बात के विषय में विचार करता हूँ तब मुझे कुछ अनिवार्य प्रश्न सुनने को मिलते हैं, जैसे की : हमें कौनसा कार्य दिया जाएगा? क्या कुछ विश्वासियों को दूसरे विश्वासियों से ज्यादा अधिकार दिया जाएगा? क्या मैं दूसरे विश्वासियों का अधिकारी (मालिक) बनूँगा? हम सब कैसे अधिकारी बन सकेंगे? क्या हमारे कार्य इसका निर्णय करेंगे की कौन किस के ऊपर राज करेगा?

हम समझ सकते हैं की ये सभी प्रश्न जगत में जीनेवाले अपूर्ण लोगों के द्वारा पुछे जाते हैं। हमारी सोच इस नुकसान पहुंचाए गए और अपूर्ण जगत की वजह से दूषित हुई है। पर बाइबल हमारे अंतिम मक़ाम को अधिकारी या कर्मचारी के बीच के संबंध के जैसे नहीं बताता है। वो तो पिता और पुत्र का संबंध बताता है। परमेश्वर के बच्चे होने के तौर पर हमारे साथी भाई-बहनों के साथ मिलकर प्रभु

के साथ काम करेंगे, जहां मनुष्य और अलौकिक व्यक्ति साथ रहेंगे। अब हम परमेश्वर ने हमारे लिए जो इरादा रखा था वैसे ही परमेश्वर हमारे साथ रहेंगे उस चित्र को देखते हैं। परमेश्वर के सभी बच्चों को परमेश्वर के जैसे, हमारे सनातन पिता के स्वरूप में बनाया गया है।

कहानी का बिन्दु यो यह है की नयी अदन वाटिका में हमारा अधिकार तो अधिश्रेणी जैसा नहीं पर *पारिवारिक सहभागिता* का होगा। जब परिवार के सभी सदस्य महिमावंत होते हैं, तब अधिश्रेणी की देखरेख रखने की जरूरत अद्रश्य होती है।

ईमानदारी से कहूँ तो हम इस विचार को समझ नहीं सकते। क्यों की हम भ्रष्ट हुए जगत में जी रहे हैं। परमेश्वर हमें चाहते हैं – परमेश्वर *आपको* चाहते हैं – परमेश्वर चाहते हैं की उन्होंने जैसी इच्छा रखी है वैसे ही आप उनके साथ जीवन का अनुभव करें। और एक दिन हम वो अनुभव प्राप्त करेंगे। बाइबल कहता है की :

> "जो बातें आँख ने नहीं देखी और कान ने नहीं सुनीं, और जो बातें मनुष्य के चित में नहीं चढ़ीं, वे ही हैं, जो परमेश्वर ने अपने प्रेम रखनेवालों के लिए तैयार की हैं।" (1 कुरिन्थियों 2:9)

सारांश और पूर्वावलोकन

अब आप जानते हैं की बाइबल किसके विषय में बात करता है। यह एक अद्‌भूत बात है।

शायद आप ऐसा विचार करते होंगे की यहाँ से हम कहाँ जाएँगे? इस बात के प्रकाश में विचार करने जैसे कुछ महत्व के बिन्दु हैं।

बात की शुरुआत में अब्राहम के विषय में लिखा है की पौलूस प्रेरित वफादारी के विश्वास के उदाहरण के तौर पर अब्राहम का उपायोग करता है (रोमियों 4:1-12)। अब्राहम कोई भी नियमों को अधीन हो उससे *पहले* परमेश्वर ने उसका स्वीकार किया था। नियम के प्रति उसकी अधीनता यह बताती थी की उसने विश्वास किया है। नियम विश्वास का स्थान नहीं लेते थे। विश्वास तो महत्व की बात है। परमेश्वर सर्वस्व है उस विश्वास की वफादारी के विषय में हम बाद में बात करेंगे। आज हम उसे चेले बनाना कहते हैं। विश्वास और वफादारी दो अलग बातें है। यह एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई बातें हैं, पर उसकी अदल बदल नहीं कर सकते। उद्धार और चेले बनाना उसके विषय में भी वोही बात सही है।

अब आगे के मार्ग पर यह परिच्छेद हमारा नक्शा बना रहेगा। "वफादारी के साथ विश्वास" यह शब्द हमारे मार्गदर्शक बनेंगे। इसके लिए मैं यह उदाहरण देता हूँ :

"विश्वास करना"

आगे के भाग में हम सुसंदेश के विषय में बात करनेवाले हैं। सुसंदेश क्या है, और क्या नहीं उसके विषय में हम बात करेंगे। हम सुसंदेश के अर्थ के विषय में सीखेंगे – हम सीखेंगे की बाइबल के अनुसार सुसंदेश में क्या समावेश होता है। यह महत्वपूर्ण है, क्यों की सुसंदेश पर विश्वास करने से हम परमेश्वर के परिवार के सदस्य बनते हैं। ऐसे हमारा उद्धार या बचाव होता है। उद्धार विश्वास से है। परमेश्वर ने उद्धार के लिए यह मार्ग बताया है, यानि की उनके परिवार में जुडने के लिए इस मार्ग की रचना की है। यह सब यीशु ने जो कार्य किए हैं उस पर आधारित है।

"वफादारी"

पुस्तक के आखरी भाग में हम चेले बनाना या तो शिष्यता के विषय में देखेंते। "चेला" शब्द तो "अनुयायी" के लिए प्रयोग किया गया शब्द है। यीशु के शिष्य या तो चेले होने का अर्थ है – यीशु के पिंछे चलना, यीशु का अनुकरण करना। यीशु ने कहा की, "जिसने मुझे देखा है उसने पिता को देखा है" (यूहन्ना 14:7,9)। यीशु जिस रीति से जीवन जिए वो हमें बताता है की उन्होंने परमेश्वर पर प्रेम रखा और वे उनके पिता को और उनकी योजना को **वफादार** थे। शिष्यता तो यीशु को और परमेश्वर पिता को कैसे प्रेम करते हैं उस बात को बताता है। वो तो परमेश्वर के प्रेम को कमाने जैसी बात *नहीं।* वो तो परमेश्वर ने हमारा बचाव करने के लिए जो योजना की थी उसे पूर्ण करने के लिए यीशु का धन्यवाद और स्तुति करने की बात है। वो तो हमारे उद्धार के लिए यीशु ने जो कार्य किए हैं, उसके बदले में, या तो उसके पूरक कार्य करने की बात नहीं। पर शिष्यता तो ऐसी बात है की यीशु ने हमारे उद्धार के लिए जो कार्य किए हैं, उस पर हम विश्वास करते हैं (याकूब 2:14-26)।

मैंने पहले कहा है की विश्वास और वफादारी दोनों अलग बात हैं, पर एकदूसरे से जुड़ी हुई है। हम उसकी अदल बदल नहीं कर सकते। उद्धार और शिष्यता के विषय में भी वोही बात सही है। हमारे उद्धार के लिए हम सुसंदेश पर भरोसा करते हैं, और चेले बनने के द्वारा हम हमारे उद्धार करनेवाले के प्रति वफादारी दिखाते हैं।

भाग 2 : सुसंदेश

अध्याय 7

सुसंदेश क्या हे?

इस समय ऐसा प्रश्न पुछना विचित्र लगता है। हम ने बाइबल की कहानी को देखने में, यानि की परमेश्वर कैसे हमें उनके परिवार के सदस्य बनाना चाहते हैं उसे देखने में बहुत समय व्यतीत किया है। हम सुसंदेश पर विश्वास करके उस परिवार के सदस्य बन सकते हैं।

मैंने देखा है की कलिसिया में भाग लेनेवाले अधिकांश लोग सुसंदेश को वास्तविक रीति से समझे नहीं हैं। कुछ लोग तो इसे स्पष्ट नहीं कर सकते। दूसरे कुछ लोग उसे सुसंगत बता तो सकते हैं, पर कईबार उसकी सरलता को सही अर्थ में समर्पित करने में संघर्ष करते हैं। वे आंतरिक रीति से इस बात के लिए दु:ख सहन कर रहे हैं की अनन्त जीवन के लिए सुसंदेश पर विश्वास करना जरूरी है।

आपमें से अधिकांश लोग ऐसा सोचते होंगे की मैं कैसी बात कर रहा हूँ! मैं शर्त लगा सकता हूँ की जब में मेरे कहने का तात्पर्य समझाऊँगा तब आप आपने आप को और दूसरे कोई भी व्यक्ति को नीचे बताई बात के जैसे देखोगे।

आइए, हम सुसंदेश की व्याख्या से शुरुआत करते हैं। स्पष्टीकरण के लिए मैं कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हम सुसंदेश क्या *नहीं है* उसके विषय में भी बात करेंगे। जब हम बात के उस भाग में जाएँगे तब आप देखोगे की मैंने जो संघर्ष की बात की है उसका अर्थ क्या है।

सुसंदेश क्या है?

"सुसंदेश" शब्द की व्याख्या करना सरल है। बाइबल में बताया गया "सुसंदेश" शब्द उद्धार के संदेश को बताता है। "सुसंदेश" शब्द तो (नए नियम की मूल भाषा के) यूनानी शब्द का अनुवाद है, जो अच्छे संदेश लानेवाले व्यक्ति के द्वारा किसी व्यक्ति को जो प्रतिफल मिलता है उसे बताता है। इसलिए कईबार आप "सुसंदेश" शब्द के बदले "अच्छा संदेश" ऐसे शब्द भी सुने होंगे, यानि की उध्धार के संदेश का अच्छा संदेश।

आइए, हम उसके विषय में विचार करें। हमें ऐसा लगता है की हम कुछ सीखे हैं। मुझे भी ऐसा लगता था की हम कुछ सीखे हैं, पर वास्तव में हमें यह जानने की जरूरत थी वो हम नहीं सीखे हैं। यह अच्छा है की अब हम इस शब्द का *अर्थ* कर सकते हैं। पर वास्तव में तो हम ने अभी भी उद्धार के संदेश में समाविष्ट हुई बातों के विषय में बात ही नहीं की है। हमने तो "सुसंदेश" शब्द का अर्थ बताया, पर सुसंदेश वास्तव में क्या है यह नहीं बताया है।

तो आइए, सुसंदेश के अर्थ के विषय में बात करते हैं। परमेश्वर ने जो उद्धार दिया है उसमे क्या सम्मिलित है? अच्छे संदेश का *विवरण* क्या है? और क्यों वो अच्छा संदेश है? नए नियम में 100 बार यह शब्द उपयोग में लिया गया है, इससे हम उसका अंदाज लगा सकते हैं।

शायद पौलूस प्रेरित सुसंदेश के संदेश के विषय में नए नियम के दूसरे लेखकों से ज्यादा बात करता है। उसने यीशु का जो संदेश दिया वो संदेश के लिए पौलूस "सुसंदेश" शब्द का प्रयोग करता है।

हे भाइयो, अब मैं तुम्हें वही सुसंदेश बताता हूँ जो पहले सुना चुका हूँ, जिसे तुम ने अंगीकार भी किया था और जिसमें तुम स्थिर भी हो.....की पवित्रशास्त्र के वचन के अनुसार यीशु मसीह हमारे पापों के लिए मर गया, और गाड़ा गया, और पावित्रशास्त्र के अनुसार तीसरे दिन जी भी उठा (1 कुरिन्थियों 15:1-4)।

पौलूस शास्त्र के दूसरे एक परिच्छेद में उसके संदेश के विषय में सुसंदेश शब्द का प्रयोग करता है :

पौलूस की ओर से जो यीशु मसीह का दास है, और प्रेरित होने के लिए बुलाया गया, और परमेश्वर के उस सुसंदेश के लिए अलग किया गया है। जिसकी उसने अहले ही से अपने भविष्यद्वक्ताओं के द्वारा पवित्रशास्त्र में, अपने पुत्र हमारे प्रभु यीशु मसीह के विषय में प्रतिज्ञा की थी; वह शरीर के भाव से तो दाऊद के वंश से उत्पन्न हुआ और पवित्रता की आत्मा के भाव से मारे हौओं में से जी उठाने के कारण सामर्थ्य के साथ परमेश्वर का पुत्र ठहरा है। उसके द्वारा हमें अनुग्रह और प्रेरिटाइ मिली की उसके नाम के कारण सब जातियों के लोग विश्वास करके उसकी मानें। (रोमियों 1:1-5)

शास्त्र के इस परिच्छेद में सुसंदेश यानि की अच्छे संदेश में जो बातें सम्मिलित हैं उसे स्पष्ट रीति से देख सकते हैं।

इसमें सम्मिलित बातें इस प्रकार हैं :

- परमेश्वर ने अपने पुत्र को भेजा...
- वो दाऊद के वंश में जन्मा...
- उसका नाम यीशु है...
- वो हमारे पापों के लिए मारा गया....
- उसे गाड़ा गया...
- वो मृत्यु में से जी हुठा...

ये सारी बातें अच्छे संदेश का विषयार्थ है। आगे हमने जो बात की उसके बड़े चित्र के प्रकाश में मैं इसे फिरसे समझाना चाहता हूँ की:

> परमेश्वर का पुत्र मनुष्य बना। हमारे पाप हमें परमेश्वर के परिवार से बाहर न रख सके इसलिए उसने दु:ख सहा, और क्रूस पर मर गया। हम भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करें और उसके और हमारे पिता जो एकमात्र सच्चे परमेश्वर हैं उनके साथ सदाकाल रहें इसलिए वो मृत्यु में से जी उठा।

आइए इसकी थोड़ी परख करते हैं। अगर ये अच्छा संदेश हैं तो *क्यों* अच्छा है? इसके बहुत कारण हैं। ये अच्छा संदेश है, क्योंकि हमारा उद्धार हमारे कार्य के ऊपर आधारित नहीं। शास्त्र के इन परिच्छेदों में आप आपके अद्भूत कार्यों की सूची को नहीं देखते हैं। सुसमाचार का विषयार्थ तो आपने जो अच्छे कार्य किए हैं, या तो करेंगे, या तो आपको अच्छे कार्य करने की जरूरत है, उसके विषय में नहीं है। यह तो दूसरे कोई व्यक्ति ने आपके लिए जो कार्य किए हैं उसके विषय में है। यह हम सबके लिए अच्छा संदेश है, क्यों की हम में से कोई भी सम्पूर्ण नहीं है। हम में से कोई भी व्यक्ति हरेक समय पर परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकता। हम में से कोई भी व्यक्ति परमेश्वर के परिवार में रहने के लिए या अपने कार्यों के द्वारा परमेश्वर के नाम से पहचाने जाने के लिए लायक नहीं है। *परमेश्वर ने हमारा स्वीकार किया है।* सुसमाचार का विषयार्थ हमें बताता है की यह कैसे होता है।

ध्यान दें की पौलूस ने लोगों को सुसमाचार देने की उसकी सेवकाई के बारे में बात करते हुए कहा है की, "विश्वास को अधीन होना।" उसकी इच्छा थी की जिन्होंने उसका संदेश सुना है वे उसकी बात में "द्रढता से स्थिर रहें।" आप किस रीति से सुसमाचार को "अधीन" होते हैं? बपतिस्मा लेकर? भेंट देकर? अच्छा बर्ताव कर के? मूर्खतापूर्वक वर्तन न कर के? गरीबों को मदद कर के? यह सारे कार्य अच्छे हैं, पर परमेश्वर तो "*विश्वास की* अधीनता चाहते हैं।" आप *विश्वास करने के द्वारा* सुसमाचार को अधीन होते हैं।

क्या आप ने इस बात पर ध्यान दिया की पौलूस ने "समजशक्ति से अधीनता" की बात नहीं की है? कैसे यीशु मनुष्य बनें या तो पुनरुत्थान कैसे संभव हुआ उस बात को शायद हम पूर्ण रीति से समझ नहीं सकते। पर परमेश्वर ऐसी इच्छा नहीं रखते की हम इस बात को पूर्ण रीति से समझें और उसके बाद उनके पास जाकर आखरी परीक्षा दें। परमेश्वर तो ऐसी इच्छा रखते हैं की हम *विश्वास* करें। क्यों ये सारी बातें तर्क से भरी हैं इसे समझने के लिए हम प्रतीक्षा कर सकते हैं।

सुसमाचार का विषयार्थ तो यह है की परमेश्वर आपको माफ करने का और सदाकाल के लिये आपको अपने परिवार में स्थान देने का प्रस्ताव रखते हैं। उनका प्रस्ताव उनके प्रेम और दयालुता को दर्शाता हैं। बाइबल कई बार उन शब्दों के बदले "अनुग्रह" शब्द का प्रयोग करता है। कोई परमेश्वर से बड़ा नहीं है इसलिए परमेश्वर इस प्रस्ताव का स्वीकार करने का दबाव नहीं डालते हैं। कोई उनके हाथ को मोड नहीं सकता है। परमेश्वर चाहते हैं इसलिए वो आपको उद्धार का प्रस्ताव देते हैं। परमेश्वर सिर्फ इतना ही चाहते हैं की आप विश्वास करें।

यह सुसमाचार का अच्छा संदेश है।

क्यों हमें सुसमाचार की जरूरत है?

आप शायद ऐसा सोचेंगे की मैंने पहले ही इसका उत्तर दे दिया है। हाँ, पर दूसरी रीति से। पर मसीही समुदाय में मेरे अनुभव के प्रकाश में कहूँ तो मुझे थोड़ा ज्यादा स्पष्ट होने की जरूरत है।

क्यों हमें सुसमाचार की जरूरत है? क्योंकि सुसमाचार के बिना परमेश्वर के साथ अनन्त जीवन की हमें कोई आशा नहीं। पापकी वजह से हम परमेश्वर से अलग हो चुके हैं। सुसमाचार पर विश्वास करना ही इस समस्या का उपाय है।

बाइबल हमारी दुर्दशा को विविध रीति से बताता है। यीशु ने कहा की वे "खोए हुए को ढूँढने और उनका उद्धार करने" आए हैं (लूका 19:10)। हम हमारे "पापों में और अपराधों में" मरे हुए (इफिसियों 2:1,5) थे और भक्तिहीन हैं (रोमियों 5:6)। हम "परमेश्वर से अलग" (इफिसियों 4:18) और "निकाले हुए" (कुलुस्सियों 1:21) थे, क्यों की हम परमेश्वर के "बैरी" (रोमियों 5:10) थे। यह अच्छा चित्र नहीं है।

हमने बाइबल की जो बात देखी वो हमें बताती है की क्यों हम ऐसे हैं। हम परमेश्वर के परिवार में जन्मे नहीं है। हम तो बहार से हैं। फिर भी परमेश्वर हमें अपने परिवार के सदस्य बनाना चाहते हैं। परमेश्वर के स्वभाव की कमी की वजह से हमें जो चाहिए वो प्राप्त करने के लिए हम हमारी बुद्धि और स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करते हैं, और इस प्रक्रिया में दूसरों का नुकसान करते हैं। हम आत्म विनाश के मार्ग में जी रहे हैं। जब हम परमेश्वर के स्वरूप के अनुसार कार्य नहीं करते, और उनके नियमों को तोड़ते हैं, और जब उसे तोड़ मरोड़ देते हैं या तो किसी का दुरुपयोग करते हैं तब हम पाप करते हैं। हम हमारे स्वभाव से पापी, स्वकेंद्रित और विद्रोही हैं। क्यों की "सबने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं।" (रोमियों 3:23)

यह पढ़कर गुस्सा होना सरल हैं। पर सुसमाचार की बात में अच्छा संदेश तो यह है की परमेश्वर यह सब जानते थे फिर भी हमें प्रेम करते हैं। एक कारण की वजह से यह उपयोगी भी है। क्योंकि सुसमाचार की यह बात उसे उद्धार के विषय में दूसरे धर्मों की शिक्षाओं से पूर्ण रीति से अलग बताती है। दूसरे धर्म पाप का इन्कार करते हैं या तो ऐसा कहते हैं की मनुष्य के कार्य, बार बार की जानेवाली धार्मिक विधियाँ, प्रार्थनाएँ, धार्मिक दिनों का पालन करना या तो और कोई रीती से अच्छा बनना इस समस्या का उपाय है।

स्पष्ट रीति से कहूँ तो सिर्फ सुसमाचार ही मनुष्य की परिस्थिति और अच्छे कार्य करने की अयोग्यता की समस्या का उपाय है। उसके सामने दूसरे धर्म आपको झूठ बताते हैं – वे कहते हैं की परमेश्वर से अलग होने की समस्या का उपाय ही नहीं, या तो फिर आपको कोई समस्या ही नहीं। सिर्फ सुसमाचार ही एक ऐसा सत्य है, जो आपको कहता है की परमेश्वर को समस्या का उपाय करना था, और उन्होंने ऐसा किया भी। सुसमाचार पारदर्शक रूप से ईमानदार है। आपको दु:ख लगे फिर भी वो आपको सत्य बताता है। वो प्रेम बताता है। आपको झूठ कहना प्रेम नहीं है।

क्या उद्धार प्राप्त करने के दूसरे कोई मार्ग हैं?

मैंने अभी आपको इस प्रश्न का उत्तर दे दिया है, पर इस प्रश्न को दूसरे द्रष्टिकोण से बताना चाहता हूँ।

परमेश्वर मुफ्त में माफी, उद्धार और उनके साथ अनन्त जीवन देते हैं। उसके लिए हम लायक नहीं और उसे कमा नहीं सकते। वास्तव में तो उसे कमाया नहीं जा सकता और उसके लिए लायक भी नहीं बना जा सकता। उसके लिए विश्वास करने की जरूरत है, या तो परमेश्वर के वचन पर और यीशु ने किए हुए सम्पूर्ण कार्यों पर विश्वास करने की जरूरत है।

सुसमाचार पर विश्वास करने का अर्थ उद्धार के विषय में दूसरी शिक्षाओं या कल्पनाओं पर विश्वास करना नहीं है। बाइबल बताता है की उद्धार के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं। उसके विषय में विचार करो। अगर आपके लिए स्वर्ग में जाने का दूसरा कोई मार्ग होता तो क्यों परमेश्वर अपने पुत्र यीशु को ऐसी भयंकर रीति से मरने के लिए भेज देते? पुत्र को मनुष्य बनकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करना था। उद्धार के लिए परमेश्वर की योजना पर विश्वास करना ही सिर्फ एकमात्र मार्ग था। यीशु के बगैर कोई भी व्यक्ति उद्धार नहीं दे सकता (प्रेरितों के काम 4:12)। यीशु ने खुद स्पष्ट रीति से कहा हैं की, "मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ; बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता।" (यूहन्ना 14:6)

इसमें कोई अस्पष्टता नहीं। यीशु ने जो कार्य किया है उसके बगैर कोई भी व्यक्ति परमेश्वर के परिवार का सदस्य नहीं बन सकता। आप दूसरे विश्वास के साथ सुसमाचार को जोड़ नहीं सकते। सुसमाचार अद्वितीय है। सुसमाचार पर विश्वास करने का अर्थ है दूसरे विश्वास से *पश्चाताप करना।* यह तो बाइबल जिसे मन फिराना कहता है उसका एक पहलू है। दूसरे पहलू भी हैं, पर उसे हमारी बातचीत के दूसरे भाग में अच्छी रीति से समझाये गए हैं।

सुसमाचार क्या नहीं है

सुसमाचार के विषयार्थ के विषय में हमने जो चर्चा की उसमें एक बात स्पष्ट हुई है की यीशु ने हमारे लिए जो सम्पूर्ण कार्य किया है वो सुसमाचार है। जो लोग यीशु ने हमारे बदले में किए गए कार्य पर भरोसा करते हैं, उन्हें अनन्त जीवन और उद्धार भेंट के स्वरूप में दिये जाते हैं।

हमारी संस्कृति इस स्पष्टता को भ्रांति में डालने का प्रयत्न करती है। वो आत्म-सुधार को और असपष्ट "आत्मिकता को" उसका पर्याय बनाती है। पर सुसमाचार की बाइबल के अनुसार जो व्याख्या है वो ऐसी बातों का विरोध करती है। सुसमाचार (और उद्धार) को व्यक्तिगत प्रकाश, यानि की "अपने अंदर द्रष्टि करने" से या आत्मखोज की यात्रा के साथ कोई संबंध नहीं। विविध आत्मिक विचारों की खोज करना सुसमाचार नहीं। यह सब तो बौद्धिक या मानसिक प्रयत्न या तो कार्य प्रवृत्तियाँ हैं। वो सुसमाचार नहीं।

पर ऐसे "वैकल्पिक सुसमाचारों"की शोध करना या उसे दूर करना सरल है। परमेश्वर जो उद्धार देते हैं उसकी सरलता पर आधार रखने में अधिकांश लोगों को ज्यादा बाधारूप बननेवाली बात भी है।

मैंने पहले बताया है की कलिसिया में जानेवाले अधिकांश लोग सुसमाचार के विषय में संघर्ष कर रहे हैं। क्योंकि वे कार्य करने के फंदे में फंसे हुए हैं। आप या आप जिसे जानते हैं ऐसा कोई भी व्यक्ति सुसमाचार शब्द की व्याख्या या शायद उसके अर्थ में जो विषयार्थ है उसकी व्याख्या कर पाएगा। पर अनन्त जीवन प्राप्त करने के लिए यीशु ने आपके लिए जो कार्य किया है उस पर विश्वास करना जरूरी है, यह विचार योग्य नहीं लगता। हमें ऐसा लगता है की उसके लायक बनने के लिए मुझे कुछ तो करना ही पड़ेगा। हम कैसे उसके लायक बनेंगे?

अगर आप बाइबल की बात को और सुसमाचार के विषयार्थ को समझें तो आप तुरंत ही जान सकोगे की परमेश्वर हमें जो देते हैं उसके हम लायक *नहीं* है। यही बात बहुत लोगों के लिए संघर्ष का कारण है। हम ऐसा अनुभव करना चाहते हैं की हमारे पास जो अच्छी बातें हैं वो हमने खुद कमाई हैं। हम दान प्राप्त करना नहीं चाहते। कोई भी कार्य किए बगैर कोई अच्छी बात प्राप्त करनी हमें गलत लगती है। हमें ऐसा लगता है की हमें कोई न कोई कार्य तो करना ही चाहिए।

अपराधभाव रहस्यमय रीति से हमारे विचारों को विकृत कर देता है। वो सुसमाचार को बिना शर्त की भेंट के जैसे देखने की हमारी योग्यता को गतिहीन बनाता है। अपराधभाव कुछ लोगों को इस बात का समर्थन करने में ले जाता है की भेंट देनेवाले व्यक्ति के लिए उन्होंने कोई कार्य किया है, इसलिए वे उस भेंट के लायक है। अगर वे खुद को इस बात के साथ सहमत नहीं कर सकते तो वे उस भेंट के लिए लायक होने का अनुभव करने के लिए कोई कार्य करने का इरादा करते हैं।

अपराधभाव हमें सुसमाचार में परमेश्वर ने बताए हुए प्रेम के प्रति अंधा कर देता है। कोई आपके मूल्य के लिए विचार करें इसलिए महेनत करने के द्वारा आप खुद पर ध्यान देते हैं। जब आपका हेतु कोई व्यक्ति को आपके लिए ऐसा विचार करवानेका है की आप उनके प्रेम और लक्ष्य के लायक हैं, तब आप आप के खुद के सिवा दूसरी किसी भी व्यक्ति पर ध्यान नहीं दे सकते। हम हमारे खुद के लिए अच्छा अनुभव करना चाहते हैं (उदाहरण के तौर पर, हम ऐसा अनुभव करना चाहते हैं की हम कोई वस्तु प्राप्त करने के लिए लायक हैं, जिससे हम ऐसी कोई भी वस्तु नहीं ले रहे हैं, जो हमारी नहीं है)। हम दूसरों को भी हमारे जैसा अनुभव करवाना चाहते हैं (उदाहरण के तौर पर, हम उनको ऐसा अनुभव करवाते हैं की हमारे साथ उस अनुभव की वजह से वे हमें कुछ दें।)

सुसमाचार इस विचार को दूर कर देता है। वो स्पष्ट नम्रता के साथ हमें उजागर करता है। वो हमें हमारा पूरा ध्यान परमेश्वर और यीशु पर ही रखने का आग्रह करता है। इसलिए अधिकांश लोगों को इस बात का स्वीकार करना कठिन लगता है। क्योंकि सुसमाचार हमें हमारे कार्यों का कोई भी अभिमान नहीं करने देता।

तो हमें यह समझ प्राप्त होती है की सुसमाचार आपके कार्यों की चिंता नहीं रखता, पर आप पहले से ही जो हो उसकी चिंता रखता है। आप मनुष्य हो। आप शुरुआत से परमेश्वर के प्रेम और योजना का पदार्थ हो। इसमें कार्य दिखाने की जरूरत नहीं। परमेश्वर हमसे प्रेम करते हैं।

इस पतित जगत में जीनेवाले पापियों के जैसे हम ऐसी सोच में बंध गए हैं की अगर कोई हमें आंतरिक और बाह्य रूप से पूरी रीति से जानेंगे तो वे हमें प्रेम नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप हम ऐसी कल्पना नहीं कर सकते की परमेश्वर हमसे प्रेम करते हैं और हम पर से उनका ध्यान हटा सके ऐसा कुछ भी नहीं। परमेश्वर हरेक विचार, शब्द, इरादा और कार्य को जानते हैं। हम में जो अपराधभाव और शर्त के साथ सम्बन्धों की सामान्यता हमें सुसमाचार में परमेश्वर का बिना शर्तवाला जो प्रेम है, उसका स्वीकार करने में बाधारूप बनता है। हम हमारे खुद के द्रष्टिकोण को नहीं समझ सकते।

इस समय मुझे कहना चाहिए की मेरा ऐसा सूचन नहीं है की जो लोग सच्चे सुसमाचार को सुनकर गंभीरता के साथ उस पर विश्वास करते हैं उनका उद्धार नहीं हुआ है। में ईमानदारीपूर्वक मानता हूँ की *वे विश्वास करते हैं* और परमेश्वर के परिवार के सदस्य हैं।

पर मैं तो अधिकांश विश्वासी अब भी जो निराशाजनक जीवन जी रहे हैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। उनमें जो अपराधभाव है उसकी वजह से सुसमाचार का प्रेम और अनुग्रह कार्य पर केन्द्रित और योग्यता पर आधारित अनुभव में रूपांतरित हुए हैं। उन्होंने ऐसा विचार करने की शुरुआत की है की जब वे सुसमाचार को समझें और उस पर विश्वास किया तब परमेश्वर ने जैसा प्रेम किया वैसा प्रेम अभी भी करते हैं या नहीं! वे ऐसा मानते हैं की विश्वासी होने के बाद वे जो पाप करते हैं उसकी वजह से परमेश्वर उन्हें अकेला छोड देते हैं। वे इस बात के साथ सहमत हुए हैं की वे परमेश्वर की अपेक्षा को पूरा नहीं कर सकते, इसलिए वे ऐसा विचार करते हैं की, "उन्होंने पर्याप्त विश्वास किया है" या तो शायद उन्होंने विश्वास किया ही नहीं।

दु:खद बात तो यह है की अधिकांश सच्चे मसीही भी ऐसे त्रास और पराजय से भरे हुए जीवन जीते हैं, सुसमाचार की वजह से नहीं, पर उनके अपराधभाव ने सुसमाचार की स्पष्टता को विकृत किया है उसकी वजह से। जब वे वचन पढ़ते हैं तब वे सिर्फ उनके पाप और निष्फलताओं को ही देखते हैं। हरेक संदेश एक आरोप पत्र लगता है (और जो ऐसे इरादे के साथ संदेश देते हैं ऐसे प्रचारकों को अफसोस)। इससे सुसमाचार का अद्‌भूत आश्चर्य खो जाता है और भुला दिया जाता है।

उद्धार कार्य के ऊपर आधारित *नहीं*। वो कभी भी कार्य पर आधारित नहीं था। कभी भी कार्य पर आधारित नहीं होगा, और हो सकता भी नहीं। हम खुद को परमेश्वर की उपस्थिती के लिए लायक बनाने के लिए और परमेश्वर के स्तर तक जाने के लिए कुछ भी नहीं कर

सकते। *हम में परमेश्वर के सम्पूर्ण स्वभाव की कमी है।* हमें परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया है, पर हम परमेश्वर से कम हैं, और परमेश्वर वो जानते हैं। इसीलिए हमारी समस्या का उपाय यीशु ही है, *हम नहीं*।

हम कोई कार्य करने के द्वारा उस खाली जगह को भर सकते हैं ऐसा विचार वाहियात है। जब आप निष्फल होते हैं तब परमेश्वर आपके लिए कुछ नया नहीं सीखते हैं। परमेश्वर पहले से आपको जानते हैं और फिर भी आप जैसे हो वैसे आपसे प्रेम करते हैं। रोमियों 5:8 कहता है : "परन्तु परमेश्वर हम पर अपने प्रेम की भलाई इस रीति से प्रगट करता है की जब हम पापी ही थे तभी मसीह हमारे लिए मरा।" आप क्या समझे? *जब हम पापी ही थे तब।* परमेश्वर आपसे प्रेम रखें इसलिए आपको कभी भी परमेश्वर के स्तर का कार्य करने की जरूरत नहीं। अगर आप कोई व्यक्ति को यह विचार सीखा रहे हैं तो वो *सच्चा* सुसमाचार है। परमेश्वर कभी भी आपसे निराश नहीं, क्यों की उनको आपके वर्तन के विषय में गलत अपेक्षाएँ नहीं है। परमेश्वर ने शुरुआत से आपको प्रेम किया है। "क्योंकी परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम रखा की उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया, ताकि जो कोई उस पर विश्वास करे वह नष्ट न हो, परन्तु अनंत जीवन पाए। " (यूहन्ना 3:16)

हम इस बात को दो विचारों के साथ समझ सकते हैं। उद्धार और परमेश्वर के परिवार की सदस्यता को कमाया नहीं जा सकता। उसे सिर्फ विश्वास से प्राप्त किया जा सकता है। परमेश्वर वो देते हैं, क्यों की परमेश्वर कृपालु और प्रेम से भरे हुए हैं। दूसरा कोई कारण नहीं, और हो सकता भी नहीं।

भाग 3 : यीशु का अनुसरण करना

अध्याय 8

शिष्यता क्या हे?

सुसमाचार का इरादा परिवर्तन लाने का है। अगर कोई व्यक्ति सुसमाचार का स्वीकार करता है “तो वो नई सृष्टि है : पुरानी बातें बीत गई हैं; देखो, सब बातें नई हो गई हैं” (2 कुरिन्थियों 5:17)। यह वास्तव में कैसा लगता है?

आप इस प्रश्न के उत्तर को याद कर सकते हैं। पहले मैंने कहा की चेला तो यीशु के पिंछे चलता है। पिंछे चलने की बात के अर्थ को समझाते हुए मैंने कहा था की “अनुसरण करना या तो यीशु के स्वरूप को प्रगट करना”। “यीशु के रूप में रूपांतरित होना” यह हमारा अंतिम मक़ाम है (रोमियों 8:29; 2 कुरिन्थियों 3:18; कुलुस्सियों 3:10)।

यीशु का अनुसरण करने का हमारा उद्देश्य तो परमेश्वर हमसे प्रेम करें और हमें स्वर्ग में जाने दे इसलिए हमें अच्छे कार्य करने हैं, ऐसा नहीं है। परमेश्वर ने तो पहले से, यानि की “जब हम पापी ही थे” (रोमियों 5:8) और परमेश्वर के बैरी थे (रोमियों 5:10), तब हमसे प्रेम किया। जब हम सुसमाचार पर *विश्वास* करते हैं तब हम स्वर्ग में जाते हैं, और परमेश्वर के परिवार के सदस्य बनते हैं। हम खोये हुए थे और हमें उद्धारक की जरूरत थी (लूका 19:10), हम परमेश्वर से अलग हो गए थे (इफिसियों 4:18)। हमारी परिस्थिति ऐसी थी तब परमेश्वर ने हमसे प्रेम किया। परमेश्वर का प्रेम पाने के लिए हम अच्छे कार्य करें इसलिए परमेश्वर ने इंतजार नहीं किया।

यीशु का अनुसरण करने का हमारा इरादा ऐसा है की परमेश्वर हम पर प्रेम रखें इसलिए हम अच्छे कार्य करें, और अंत में हमारा उद्धार हो। जिसे अच्छे कार्यों से सिद्ध नहीं किया जा सकता, उसे अच्छे कार्य न करने की वजह से खोया भी नहीं जा सकता। उद्धार को हमारी योग्यता और क्षमता के साथ कोई संबंध नहीं। उद्धार तो यीशुने हमारे लिए जो कार्य किए हैं, उस पर ही आधारित है। “जो पाप से अज्ञात था, उसी को उसने हमारे लिए पाप ठहराया की हम उसमें होकर परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएँ” (2 कुरिन्थियों 5:21)। हम उद्धार का श्रेय नहीं ले सकते। उद्धार का पूरा श्रेय यीशु को ही जाता है।

शिष्यता के विषय में स्पष्ट विचार करना

शिष्यता में यह सब बातें कैसे लागू होती है उसके लिए हमें गौर से विचार करने की जरूरत है।

मैंने पहले बात की है वैसे ही कार्य के फंदे की वजह से हमें इस वास्तविकता को समझना जरूरी है, की उद्धार और शिष्यता एक ही बात नहीं है। अधिकांश विश्वासी उनके पाप के अपराधभाव की वजह से अनजाने में उनके कार्यों को सुसमाचार के साथ जोड़ने की शुरुआत करते हैं। उसका परिणाम तो यीशु हमें जो अनन्त जीवन देना चाहते हैं वो नहीं पर आत्मिक बंधन है (यूहन्ना 10:10; 2 कुरिन्थियों 1:5; इफिसियों 3:20)।

उद्धार तो जब हम सुसमाचार पर *विश्वास* करते हैं तब परमेश्वर के द्वारा दी गई भेंट है। उसके लिए योग्यता की जरूरत नहीं। हमारे पाप और परमेश्वर से अलगता होने के बावजूद परमेश्वर हमें यह भेंट देते हैं। शिष्यता तो सुसमाचार पर विश्वास करने के *परिणामस्वरूप* हम

जो करते हैं वो कार्य है। हम यीशु और परमेश्वर पर हमारा प्रेम प्रगट करने के लिए यीशु का अनुसरण करते हैं। यीशु परमेश्वर का स्वरूप है, इसलिए हम भी यीशु के जैसा जीवन जीने की इच्छा रखते हैं।

यीशु के जैसा पवित्र जीवन जीने के बहुत कारण है। उनमें से एक कारण तो परमेश्वर का प्रेम प्राप्त करने के लिए लायक या योग्य बनना नहीं है। उद्धार के लिए हमें कोई कीमत चूकानी नहीं है; यह तो सुसमाचार पर विश्वास करनेवाले हरेक व्यक्ति के लिए मुफ्त है, पर शिष्यता की कीमत चूकानी पड़ती है। कई बार यीशु का अनुसरण करना सरल नहीं होता। चेला बनने के लिए परमेश्वर से प्रेम करने की, उनको सम्मान देने की और लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करने की जरूरत है, क्यों की लोग परमेश्वर के स्वरूप में है, इसलिए परमेश्वर उनसे प्रेम करते हैं, और सुसमाचार के द्वारा अपने परिवार के सदस्य बनाना चाहते हैं।

यीशु के जीवन के विषय में विचार करो। वो सरल नहीं था। बाइबल कहता है की, "मसीह भी तुम्हारे लिए दु:ख उठाकर तुम्हें एक आदर्श दे गया है की तुम भी उसके पद-चिह्नों पर चलो" (1 पतरस 2:21)। यीशु ने अपने जीवन का बलिदान दिया। उन्होंने प्रथम तो परमेश्वर से प्रेम किया और अपने "पड़ोसी" से भी प्रेम किया :

> "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है की तू अपने पडोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएँ सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार है। " (मत्ती 22:37-40)

परमेश्वर उनसे प्रेम करें और उनसे प्रसन्न हो इसलिए यीशु ऐसा जीवन नहीं जिये थे। यीशु तो इस जगत में आए और वाचा को पूरी करने के "कार्यों को करे" उससे पहले परमेश्वर पिता यीशु से प्रेम रखते थे। परमेश्वर ने तो "जगत की उत्पत्ति से पहले" यीशु से प्रेम रखा (यूहन्ना 17:24)।

यीशु का अनुसरण करना कठिन हो सकता है। क्योंकि कोई भी विश्वासी प्रथम बार विश्वास करता है, तब वो यीशु जैसा नहीं होता। इसलिए सातत्य के साथ यीशु जैसा जीवन जीना कठिन लगता है – हरेक चेले को उसके हृदय और वर्तन को बदलने की जरूरत है (बाइबल उसे "मन फिराना या तो पश्चाताप") कहता है। में जानता हूँ की मैंने ऐसा किया है। कुछ कार्यों को करना मुझे बंद करना पडेगा और कुछ कार्यों को करने की शुरुआत करनी पड़ेगी। पर उनमें से कोई भी कार्य परमेश्वर मुझसे प्रेम रखें इसलिए योग्यता प्राप्त करने के लिए नहीं है। परमेश्वर ने तो पहले से मुझ पर प्रेम रखा है।

यीशु ने जो कार्य किए वो परमेश्वर पिता के प्रति उनके प्रेम की वजह से किए। यीशु तो लोगों को अपने पर और परमेश्वर की योजना पर विश्वास करने में सहायता हो इसलिए ऐसा जीवन जिए। हमें भी ऐसा ही करना चाहिए। यीशु जानते थे की वे क्यों इस पृथ्वी पर हैं, कैसे हमारे लिए मरेंगे, और फिरसे अपने पिता के पास जाएंगे।

हमें भी अनन्तकाल के लिए ऐसा द्रष्टिकोण रखना ही है। यह जगत हमारा वास्तविक घर नहीं है। यह तो अल्पकालीन या अस्थायी ठिकाना है। दूसरा जो है वो स्थायी निवासस्थान है। यीशु ने जो कार्य किए हैं, उसकी वजह से जब हम इस जगत को छोड कर जाएँगे, तब दूसरे जगत में अनन्त जीवन की विरासत को प्राप्त करेंगे। हमारे जीवन का लक्ष्य तो हमारा उद्धार करनेवाले परमेश्वर को वफादारी और कृतज्ञता बताना और दूसरे लोगों को परमेश्वर के परिवार में प्रवेश करने के लिए सहायता करने का होना चाहिए।

अगर हम इसमें निष्फल हुए तो क्या होगा? अगर हम पाप करेंगे तो क्या होगा? हम यह दोनों कार्य करेंगे और परमेश्वर यह जानते हैं। परमेश्वर मनुष्यों को अच्छी रीति से जानते हैं! परमेश्वर जानते हैं की हम कैसे हैं। पर हमने परमेश्वर से प्रेम करने के लिए जो सबसे छोटा कार्य किया उससे पहले से परमेश्वर हमसे प्रेम रखते हैं। जब हम परमेश्वर के बैरी थे और पापी थे (रोमियों 5:8) तब उन्होंने हमसे प्रेम रखा। हम परमेश्वर के परिवार में प्रवेश करें इससे पहले परमेश्वर ने हमसे प्रेम रखा। तो अब जब हम उनके परिवार के सदस्य बन चूके हैं तो वे क्यों हमसे कम प्रेम रखेंगे, या तो प्रेम करना बंद करेंगे? जब हम पाप करते हैं या तो निष्फल होते हैं, तब वो हमें माफ करते हैं। परमेश्वर चाहते हैं की हम इस बात पर *विश्वास* करें, और फिरसे यीशु का अनुसरण करने के मार्ग पर वापिस आयें।

क्यों यीशु के जैसा जीवन जीना चाहिए?

मैंने थोड़े समय पहले ही कहा है की यीशु जैसा जीवन जीने के बहुत कारण है, पर उनमें से एक भी कारण परमेश्वर का प्रेम पाने के *लायक होने का नहीं* है। वे कारण कौन से है?

प्रथम कारण तो यह है की पाप खुद का विनाश करता है, और सिर्फ हमारा ही नहीं पर हमारी आसपास के लोगों का भी नुकसान करता है। मैंने मेरे खुद के बड़े परिवार में शराब और नशे की दवाओ की लत और व्यभिचार की असरों को देखा है। स्वाभाविक रीति से यह सभी बातें जीवन का नाश करती हैं। उतनी ही स्वाभाविक बात यह भी है की इस जगत की अविश्वासी संस्कृति जो आनंद और आत्मसंतोष देती है वो अंत तक नहीं रहते। संस्कृति हमें कहती है की हमारे निर्णयों की वजह से दूसरों को कोई दु:ख क्यों न हो, पर हमें हमारे खुद के "आनंद" कि संतुष्टि के लिए "जीवन जीना" चाहिए। संस्कृति हमें अनन्त काल का द्रष्टिकोण नहीं देती है। वो हमें आज के लिए जीवन जीना सिखाती है। संस्कृति हमें दूसरी कोई बड़ी बुलाहट नहीं देती है। बाइबल ऐसी विचारधाराओं को उजागर करते हुए कहता है की :

> "तुम न तो संसार से और न संसार में की वस्तुओं से प्रेम रखो। यदि कोई संसार से प्रेम रखता है, तो उसमें पिता का प्रेम नहीं है। क्योंकि जो कुछ संसार में है, अर्थात शरीर की अभिलाषा और आँखों की अभिलाषा और जीविका का घमण्ड, वह पिता की और से नहीं परन्तु संसार ही की और से है। संसार और उसकी अभिलाषाएँ दोनों मिटते जाते हैं, पर जो परमेश्वर की इच्छा पर चलता है वह सर्वदा बना रहेगा" (1 यूहन्ना 2:15-17)।

दूसरा कारण पहले कारण से कई बातों में विपरीत है। धार्मिक जीवन जिने से दूसरे लोग आशिषित होते हैं। सत्य यह है की हम जिस रीति से जीवन जीते हैं उससे लोग आशिषित होते हैं, या तो श्रापित होते हैं। यीशु ने लोगों की सेवा की, और लोगों के लिए आशीष का कारण बनें। आत्म-संतोष और आत्म-शोषण के द्वारा संचालित की जानेवाली जीवनशैली का अनुसरण करने से परिपूर्णता नहीं होती। हरेक बड़े बाजार (सुपरमार्केट) के समाचार उस वास्तविकता के उदाहरणो को बताते हैं। लोगों के लिए आशिषित बनने से यीशु को प्रगट किया जा सकता है उतना ही नहीं, पर वो लोगों को व्यक्तिगत परिपूर्णता में भी अगुवाई देता है। जब आप दूसरों की सेवा करने के लिए जीते हो तब आपके जीवन का अर्थ साकार होता है।

तीसरा कारण यह है की धार्मिक जीवन हमें सुसमाचार के गवाह बनाता है। लोग हमारे जीवन में अविश्वासी जगत से कोई अलगता नहीं देखते, और दूसरों की सेवा करनेवाले जीवन को न देखें तो उनको सुसमाचार पर विश्वास नहीं होगा (या तो वे भ्रांति में आ जाएँगे) । वे हमारे जीवन को यीशु के संदेश से विपरीत देखेंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो जब हम लोगों से कहते हैं की यीशु उनसे प्रेम करते हैं तब लोग हमसे ऐसी अपेक्षा रखते हैं की हम यीशु के जैसा जीवन जिएँ। यह अतार्किक नहीं है। वैकल्पिक जीवन दंभ से भरा जीवन है, और दंभ की प्रशंसा कोई भी नहीं करता है।

धार्मिक जीवन जीने से स्वर्ग में स्थान प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती है। हम हमारी "आत्मिकता के गुणो से" परमेश्वर को हमारे कर्जदार नहीं बनाते हैं। यहाँ बताए गए शास्त्रवचन हमें एक अलग बात पर ध्यान केन्द्रित कराते हैं :

> "इसलिए हे भाइयों, में तुम से परमेश्वर की दया स्मरण दिलाकर विनती करता हूँ की अपने शरीरों को जीवित, और पवित्र, और परमेश्वर को भावता हुआ बलिदान करके चढ़ाओ। यही तुम्हारी आत्मिक सेवा है। इस संसार के संद्रश्य न बनो, परन्तु तुम्हारे मन के नए हो जाने से तुम्हारा चाल चलन भी बदलता जाए, जिससे तुम परमेश्वर की भली, और भावती, और सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम करते रहो" (रोमियों 12:1-2)
>
> "तौभी परमेश्वर की पक्की नींव बनी रहती है, और उस पर यह छाप लगी है: ''प्रभु अपनों को पहिचानता है,'' और ''जो कोई प्रभु का नाम लेता है, वह अधर्म से बचा रहे। बड़े घर में न केवल सोने-चाँदी ही के, पर काठ और मिट्टी के बर्तन भी होते हैं, कोई कोई आदर, और कोई-कोई अनादर के लिए। यदि कोई अपने आप को इनसे शुद्ध करेगा, तो वह आदर का बर्तन और पवित्र ठहरेगा; और स्वामी के काम आएगा, और हर भले काम के लिए तैयार होगा।" (2 तिमुथियुस 2:19-21)

> अत: यदि मसीह में कुछ शान्ति, और प्रेम से ढाढ़स, और आत्मा की सहभागिता, और कुछ करुणा और दया है, तो मेरा यह आनन्द पूरा करो की एक मन रहो, और एक ही प्रेम, एक ही चित्त, और एक ही मनसा रखो । विरोध या झूठी बड़ाई के लिए कुछ न करो, पर दीनता से एक दूसरे को अपने से अच्छा समझो । हर एक अपने ही हित की नहीं, वरन दूसरों के हित की भी चिन्ता करे । जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा स्वभाव भी हो; जिसने परमेश्वर के स्वरूप में होकर भी परमेश्वर के तुल्य होने को अपने वश में रखने की वस्तु न समझा । वरन अपने आप को ऐसा शून्य कर दिया, और दास का स्वरूप धारण किया, और मनुष्य की समानता में हो गया । और मनुष्य के रूप में प्रगट होकर अपने आप को दिन किया, और यहाँ तक आज्ञाकारी रहा की मृत्यु, हाँ, क्रूस की मृत्यु भी सह ली । (फिलिप्पियों 2:1-8)

शास्त्र के ये भाग हमें हमारा जीवन कैसे जीना है वो बताते हैं, पर हमने अभी भी शिष्यता के स्पष्टीकरणों को प्राप्त नहीं किये हैं। चेला कैसे जीवन जीता है? सदभाग्य से यीशु और उनके मूल चेले और शुरुआत के मसीही लोग इस बात को स्पष्ट करते हैं। यीशु ने खुद जो कार्य नहीं किए थे वैसे कोई भी कार्य को उनके चेलों को करने के लिए नहीं कहा था। उनके चेलों ने उनके दिये गए नमूने का अनुसरण किया और कलिसिया के शुरुआती दिनों में दूसरे लोगों को भी ऐसा ही करना सिखाया था।

अध्याय 9

चेले क्या करते हे?

इस बात से आपको आश्चर्य होगा की यीशु ने उनके चेलों को बहुत सारे कार्यों को करने की आज्ञा नहीं दी थी। परमेश्वर को और दूसरे लोगों को प्रेम करने का उनका दर्शन जटिल नहीं था। पर उन्होंने उनके चेलों को जो कार्य करने की आज्ञा दी थी वे कार्य गहन और जीवन को बदलनेवाले कार्य थे। चेले होने के सबसे महत्व के बिन्दु से हम उसकी शुरुआत करेंगे।

चेले परमेश्वर से, अपने पड़ोसी से और एक दूसरे से प्रेम रखते हैं।

हम जानते हैं की यीशु ने परमेश्वर पिता को समर्पित जीवन का सारांश कैसे दिया है। सबसे बड़ी आज्ञा थी की :

> "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है की तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएँ सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार है। (मत्ती 22:37-40)

यीशु ने इस प्रकार किया। यीशु ने अपने चेलों को कहा की, "संसार जाने की मैं पिता से प्रेम रखता हूँ, और जैसे पिता ने मुझे आज्ञा दी मैं वैसे ही करता हूँ।" (यूहन्ना 14:31) यीशु ने कैसे बताया की वो परमेश्वर से प्रेम रखते हैं? उन्होंने परमेश्वर पिता की आज्ञाओं को माना। उन्होंने अपने लिए परमेश्वर पिता की योजना को पूरा किया। उन्होंने ऐसा भी कहा की, "जैसा पिता ने मुझ से प्रेम रखा, वैसा ही मैं ने तुम से प्रेम रखा; मेरे प्रेम में बने रहो" (यूहन्ना 15:9)। यीशु ने अपने चेलों को ऐसा ही करने को कहा, और दो सबसे बड़ी आज्ञाएँ यही बात को बताती है।

यीशु ने खुद का उदाहरण देते हुए अपने चेलों से कहा की जैसे उन्होंने अपने चेलों से प्रेम रखा है वैसे ही चेलों को एक दूसरे से प्रेम रखना चाहिए। जब चेलों ने ऐसा किया तब उन्होंने यीशु की आज्ञा मानी और परमेश्वर को प्रसन्न किया। यीशु ने उनसे कहा की :

> इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं की कोई अपने मित्रों के लिए अपना प्राण दे। जो आज्ञा में तुम्हें देता हूँ, यदि उसे मानो तो तुम मेरे मित्र हो। अब से मैं तुम्हें दास न कहूँगा, क्यों की दास नहीं जानता की उसका स्वामी क्या करता है; परंतु मैं ने तुम्हें मित्र कहा है, क्योंकि मैं ने जो बातें अपने पिता से सुनीं, वे सब तुम्हें बता दीं। तुम ने मुझे नहीं चुना परन्तु मैं ने तुम्हें चुना है और तुम्हें नियुक्त किया कि तुम जाकर फल लाओ और तुम्हारा फल बना रहे, कि तुम मेरे नाम से जो कुछ पिता से माँगो, वह तुम्हें दे। इन बातों कि आज्ञा मैं तुम्हें इसलिए देता हूँ कि तुम एक दूसरे से प्रेम रखो। (यूहन्ना 15:13-17)
>
> ...जैसा मैंने तुम से प्रेम रखा है, वैसा ही तुम भी एक दूसरे से प्रेम रखो। यदि आपस में प्रेम रखोगे, तो इसी से सब जानेंगे कि तुम मेरे चेले हो। (यूहन्ना 13:34-35)

परमेश्वर से और एक दूसरे से प्रेम रखना तो यीशु के मत से उनके चेलों के अति आवश्यक और बुनियादी चिह्न हैं। यीशु ने यह दो आज्ञाओं को कोई भी प्रकार से विरोधाभासी रीत से नहीं देखी। वो एक मानसिक तनाव नहीं पर एक ही सिक्के के दो पहलू जैसी हैं। दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते।

पर हम कैसे लोगों से प्रेम रखते हैं? प्रेम कि यह सबसे बड़ी अभिव्यक्ति तो अपना प्राण देने कि है :

"इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिए अपना प्राण दे" (यूहन्ना 15:13)। यीशु ने हमारे लिए ऐसा ही किया है।

> किसी धर्मी जन के लिए कोई मरे, यह तो दुर्लभ है; परन्तु हो सकता है किसी भले मनुष्य के लिए कोई मरने का भी साहस करे। परन्तु परमेश्वर हम पर अपने प्रेम कि भलाई इस रीति से प्रगट करता है कि जब हम पापी ही थे तभी मसीह हमारे लिए मरा। (रोमियों 5:7-8)

इस अंतिम अभिव्यक्ति के तौर पर मैं 1 कुरिन्थियों 13:4-7 के अलावा दूसरी कोई भी अच्छी व्याख्या के विषय में सोच नहीं सकता। उसमें प्रेम के विषय में जो कहने कि जरूरत है वो सब कहा गया है। उस शास्त्रभाग के लक्षण इस प्रकार है:

- प्रेम धीरजवंत है
- प्रेम परोपकारी है
- प्रेम दाह नहीं करता
- प्रम अपनी बड़ाई नहीं करता
- प्रेम अनरीति नहीं चलता
- प्रेम अपनी भलाई नहीं चाहता
- प्रेम झुँझलाता नहीं
- प्रेम बुरा नहीं मानता
- प्रेम सत्य से आनंदित होता है
- प्रेम सब बातें सह लेता है
- प्रेम सब बातों कि प्रतीति करता है
- प्रेम सब बातों कि आशा रखता है
- प्रेम सब बातें सह लेता है

आप वेलेन्टाइन डे या कोई रोमांचक शैली के कार्ड में बताई हुई सूची के उन बिन्दुओं को देख पाएंगे। यह सत्य है कि हमें हमारे पति/पत्नी से या तो जो हमारे पति/पत्नी बनेंगे ऐसी आशा रखते हैं, उनसे प्रेम करना चाहिए। पर वास्तव में तो 1 कुरिन्थियों 13:4-7 का शास्त्रभाग उस प्रेम के विषय में बात नहीं करता है। हमें सामान्य रीति से हरेक लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए। उन्हें ऐसा प्रेम असंगत लगे फिर भी ऐसा करना चाहिए। परमेश्वर वो देखेंगे और प्रसन्न होंगे।

दूसरे कुछ विधानों को इस सूची के दूसरे विधानों के संदर्भ में पढ़ना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर, "प्रेम सब बातों कि प्रतीति करता है" उन शब्दों का "प्रेम सत्य से आनंदित होता है" इन शब्दों के साथ संतुलन होना ही चाहिए। "प्रेम सब बातों कि प्रतीति करता है" उन शब्दों को अलग करके हम ऐसी समीक्षा नहीं कर सकते, कि प्रेम गलत और दुष्ट शिक्षा की भी प्रतीति करता है। इसी प्रकार "प्रेम सब बातों कि आशा रखता है" यह शब्द किसी भी व्यक्ति के लिए बुरी आशा रखने कि बात नहीं बताते। पर सामान्य तौर पर इस सूची को समझना सरल है और ऐसा दैनिक जीवन जीना एक चुनौती है।

हम आगे बढ़ें उससे पहले में दुसरा एक बिन्दु बताना चाहता हूँ। शिष्यता के अर्थ में जिसका समावेश होता है वो तो यीशु कि उस प्रथम आज्ञा पर आधारित है कि, "...जैसा मैंने तुम से प्रेम रखा है, वैसा ही तुम भी एक दूसरे से प्रेम रखो। यदि आपस में प्रेम रखोगे, तो इसी से सब जानेंगे कि तुम मेरे चेले हो" (यूहन्ना 13:34-35)। एक दूसरे से प्रेम रखना – लोगों से प्रेम करना यह तो चेले जो दूसरे कार्यो को करते हैं (यानि कि प्रार्थना, उपवास, भेंट देना, संगति करना इत्यादि) उन सबका केन्द्रबिन्दु है। यह सभी बातें बुनियादी आज्ञा कि अभिव्यक्ति है।

चेले एक दूसरे कि संभाल रखते हैं

शिष्यता का यह मूल तत्व एक दूसरे से प्रेम करने के कार्य कि प्रगति है। एक दूसरे कि संभाल रखने का अर्थ है *समुदाय में रहकर एक दूसरे कि संभाल करना।*

पिन्तेकुस्त के दीन के बाद (प्रेरितों के काम 2:1-4) जब बहुत लोगों ने सुसमाचार पर विश्वास किया तब वे "कलिसिया" के नाम से पहचाने जानेवाले समुदाय का हिस्सा बनें (उनकी स्थिति में यरूशलेम कि स्थानिक कलिसिया)। नए नियम में "कलिसिया" शब्द कोई भवन या अधिकृत संस्था को नहीं बताता। नया नियम हमें कहता है कि यरूशलेम कि कलिसिया उनकी गरीबी के लिए प्रसिद्ध थी। उनके पास इकठ्ठा होने के लिए कोई भवन नहीं था (और वहाँ सेंकड़ों नए विश्वासी थे; प्रेरितों के काम 2:41; 47; 5:14)। उनका कोई कानूनी पद नहीं था। उसका क्या अर्थ है? तो फिर यीशु के अनुयायी उनका पोषण कैसे करते थे? उन्होंने एक द्रढ और आत्म-बलिदान करनेवाले समुदाय कि रचना की थी। कई बार आधुनिक कलिसियाओं में हम खेलकुद के कोई जूथ के प्रशंसकों को या कोई अच्छे काम को आपस में समर्थन देनेवाले समर्थकों के जैसे एक हेतु रखनेवाले जूथ के लिए समुदाय शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐसी समझ नए नियम के समुदाय के लिए अधूरी है। नए नियम कि कलिसिया का समुदाय तो एक परिवार था।

आपस में एक हेतु के साथ जुड़े हुए लोग और परिवार में क्या भिन्नता है? क्या आप किसी के पास ऐसी अपेक्षा रखेंगे कि आप एक बेझ बोल टीम को पसंद करते हैं, इसलिए वे आपको पैसे दें, या तो आपका किराया दें, या तो आपको किराने का सामान खरीद कर दें? क्या आप कोई व्यक्ति से ऐसी अपेक्षा रखेंगे कि उन्होंने जिसे वोट दिया है उसी व्यक्ति को आपने भी वोट दिया है, या तो आप दोनों ने एक ही काम के लिए पैसे इकठ्ठे करने के लिए 5000 मीटर कि दौड़ में भाग लिया है इसलिए वो व्यक्ति आपको नौकरी देगा या आपकी कार को ठीक कर देगा? नहीं। पर आप परिवार के सदस्यों से मदद कि अपेक्षा रखेंगे (परिवारजनों को या तो खून का रिश्ता हो ऐसे संबंधियों को ऐसे कार्य करना चाहिए)।

शुरुआत कि कलिसिया ऐसी ही थी। यहाँ उसकी एक झलक है:

> अत: जिन्होंने उसका वचन ग्रहण किया उन्होंने बपतिस्मा लिया; और उसी दिन तीन हजार मनुष्यों के लगभग उनमें मिल गए। और वे प्रेरितों से शिक्षा पाने, और संगति रखने, और रोटी तोड़ने, और प्रार्थना करने में लौलीन रहे। और सब लोगों पर भय छा गया, और बहुत से अद्‌भूत काम और चिह्न प्रेरितों के द्वारा प्रगट होते थे। और सब विश्वास करनेवाले इकठ्ठे रहते थे, और उनकी सब वस्तुएँ साझे में थीं। वे अपनी अपनी सम्पत्ति और सामान बेच-बेचकर जैसी जिसकी आवश्यकता होती थी बाँट दिया करते थे। वे प्रतिदिन एक मन होकर मन्दिर में इकठ्ठे रहते थे, और घर-घर रोटी तोड़ते हुए आनन्द और मन कि सिधाई से भोजन किया करते थे, और परमेश्वर कि स्तुति करते थे, और सब लोग उनसे प्रसन्न थे : और जो उद्धार पाते थे, उनको प्रभु प्रतिदिन उनमें मिला देता था। (प्रेरितों के काम 2:41-47)

यह शास्त्रभाग साम्यवाद कि बात नहीं कर रहा है। यह कोई राजकीय पद्धति कि भी बात नहीं कर रहा है। इस शास्त्रभाग में आप जिस वर्तन को देखते हो ऐसा वर्तन करने के लिए उन्हें सरकार कोई अगुवाई नहीं दे रही, या जबरदस्ती भी नहीं कर रही। यह पूर्ण रीति से स्वैच्छिक वर्तन था। यह तो एक स्वस्थ, सामान्य परिवार के वर्तन को दर्शाता है। परिवार उसके सदस्यों कि जरूरतों को पूरी करता था। इस समुदाय में सेंकड़ों लोग रहते थे।

यह तो शिष्यता के वर्तन का चित्र है। वे समुदाय का पोषण करते हैं। वे एक परिवार के जैसे एक दूसरे से प्रेम रखते हैं और एक दूसरे का समर्थन करते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक दूसरे से संसाधन बांटते हैं। कुछ विश्वासियों की जरूरतें पैसे की थी, और कुछ विश्वासियों की समय की, या सेवा की, या तो कौशल की थी। बुनियादी तौर पर देखें तो समुदाय उसके सदस्यों कि जरूरत के अनुसार कार्य करता है।

आप शायद ऐसा सोचें कि इस समुदाय में तो बहुत लोग थे तो फिर वे एक दूसरे को कैसे पहचानेंगे? विश्वासी लोग मन्दिर में इकठ्ठा होते थे (इससे यहूदी अगुओं के साथ संघर्ष होता था, पर सुसमाचार के प्रचार के लिए यह एक अच्छा स्थान था) और वे लोग "घर-घर" इकठ्ठा होते थे (प्रेरितों के काम 2:46; 5:42)। इसका अर्थ यह हैं कि यरूशलेम कि "कलिसिया", जो एक मूल मसीही समुदाय था वो

वास्तव में तो छोटे छोटे समुदायों का एक समाज था। समुदायों में कुछ लोग नए विश्वासियों को मदद करते थे और उनका स्वीकार करते थे।

ऐसे समुदाय नए विश्वासीयों के लिए प्रवेशद्वार थे। मसीही समुदाय तो सुसमाचार का अंगीकार करनेवाले लोगों का समुदाय था। हरेक समुदाय उसके सदस्यों को चेले बनाने में सहभागी हुआ था। यह कैसा लगता है?

सामान्य रीति से जो प्रथम कार्य हुआ वो तो नए विश्वासियों का बपतिस्मा था (प्रेरितों के काम 2:41; 8:12-13; 10:47-48; 16:15)। बपतिस्मा तो यीशु और उनके चेलों के साथ जो पहचान थी उसकी उद्घोषणा का कार्य था (दूसरे गवाह, यानि कि दूसरे समुदाय के सदस्य उसका अवलोकन करते थे)। यह बहुत बातों को दर्शाता है, उसमें यीशु ने क्रूस पर किए हुए कार्य की वजह से आपके पाप क्षमा किए गए हैं, और अब आपके पास नया जीवन है इस बात का समावेश होता है (रोमियों 6:1-4; 2 कुरिन्थियों 5:17)। समुदाय के जीवन में प्रवेश करने का प्रथम कदम तो बपतिस्मा था। जिन व्यक्तियों का बपतिस्मा होता था उन्होंने यीशु पर विश्वास करने का अंगीकार किया था और गवाहों ने उनके समर्पण का स्वीकार किया था।

जब विश्वासीयों के समुदाय इकठ्ठा होते हैं तब वे जरूरतों को खोज लेते हैं। अगर वे उनके छोटे समुदायों में जो लोग हैं उनकी जरूरतों को पूरी कर सकते हैं तो वे उनकी जरूरतों को पूरी करते हैं। उससे जिन विश्वासियों कि जरूरतें पूरी कि गई थी उन्हें यीशु का अनुसरण करने में सहायता प्राप्त हुई थी। जिनकी सहायता कि गई थी वे यीशु जैसा जीवन कैसे जी सकते हैं उस बात को सीखे थे। जब छोटा समुदाय बड़ी जरूरत को पूरी नहीं कर सकता था तब विश्वासियों का विस्तृत परिवार उनको सहायता करता था। सेवा के इस विस्तृत संकलन के लिए प्रेरित, जो यीशु के मूल चेले थे और यरूशलेम की वृद्धि प्राप्त कर रही कलिसिया के अगुवे थे उन्होंने पूरे समुदाय में "सुधि लेने के लिए" सहायकों को नियुक्त किए थे (प्रेरितों के काम 6:1-7)।

इस संदर्भ में शुरुआत की कलिसियाएँ "प्रभुभोज" करने के लिए पर्व का आयोजन करती थी (1 कुरिन्थियों 11:17-34)। "प्रभुभोज" तो यीशु ने जो अंतिम भोजन किया था उसे याद करने का उत्सव था। उस भोजन के समय यीशु ने अपने चेलों से कहा था की हरेक लोगों के लिए उनका शरीर तोड़ा जाएगा और उनका रक्त बहाया जाएगा। यीशु ने उनसे कहा था की उनके जीवन का बलिदान तो "नए नियम की" परिपूर्णता है (लूका 22:20)। प्रभुभोज के पर्व का वर्णन वोही बात बताता है (1 कुरिन्थियों 11:25)। प्रभुभोज तो यीशु ने जो कार्य किया था उसे याद करने की रीत थी। यीशु ने अपने चेलों से कहा था की, "मेरे स्मरण के लिए यही किया करो" (1 कुरिन्थियों 11:24-25)। वो तो विश्वासियों के समुदाय में जो गरीब थे उनकी सुधि लेने की रीत भी थी।

चेलों की संगति

"संगति" शब्द तो नए नियम का शब्द है जो विश्वासी समुदाय की प्रवृत्तिओं को बताता है। एक दूसरे की संभाल रखना तो बाइबल आधारित संगति का भाग है, क्योंकि जब विश्वासी लोग इकठ्ठा होते हैं तब उनकी जरूरतों की परख करके उसे पूरी की जाती है। ऐसा कहकर चेले जो दूसरा कार्य करते हैं उसके विषय में बात करने के लिए हमें संगति की संक्षिप्त में चर्चा करने की जरूरत है।

अधिकांश मसीही लोग "संगति" को एक दूसरे के साथ आनंद करने की प्रवृत्तिओं के समान गिनते हैं। हाँ, साथ में मिलकर आनंद की प्रवृत्ति करने से संबंध मजबूत होते हैं। एक दूसरे की संगति का आनंद प्राप्त करने से लोगों के सम्बन्धों में आत्मीयता की वृद्धि होती है। पर वास्तविकता में चेले बनने की बात में यह संगति बाइबल आधारित नहीं है।

साथ में मिलकर आनंद करना और बाइबल आधारित संगति करना इन दो बातों में भिन्नता यह है की सिर्फ एक दूसरे के साथ समय व्यतीत करना ही संगति नहीं है। बाइबल आधारित संगति तो जान-बूझकर किया गया कार्य है।

संगति करने का उद्देश्य तो यीशु की उपस्थिती में "एक मन के होने का है" जिससे "हम में यीशु का मन हो"। दूसरे शब्दों में कहें तो संगति का उद्देश्य तो शिष्यता है। फिलिप्पियों में बताए गए कुछ पद इस विचार को प्रगट करते हैं :

> केवल इतना करो की तुम्हारा चाल-चलन मसीह के सुसमाचार के योग्य हो की चाहे में आकार तुम्हें देखूँ, चाहे न भी आऊँ, तुम्हारे विषय में यही सुनूँ की तुम एक ही आत्मा में स्थिर हो और एक चित्त होकर सुसमाचार के विश्वास के लिए परिश्रम करते रहते हो। (फिलिप्पियों 1:27)
>
> अत: यदि मसीह में कुछ शान्ति, और प्रेम से ढाढ़स, और आत्मा की सहभागिता, और कुछ करुणा और दया है, तो मेरा यह आनन्द पूरा करो की एक मन रहो, और एक ही प्रेम, एक ही चित्त, और एक ही मनसा रखो...जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुमारा भी स्वभाव हो। (फिलिप्पियों 2:1-2,5)

मसीह का मन होना और विश्वासियों के समुदाय के तौर पर एक मनसा रखने का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ यह है की सब लोग हरेक विवरण पर विश्वास करते हैं? नहीं, बाइबल एकता की बात करता है, एकरूपता की नहीं। "एक मनसा रखना" इस बात को समझने की अच्छी रीत यह है की समुदाय के हरेक सदस्य यीशु के जैसा बनने के एक ही उद्देश्य को पूरा करते हैं। उसका उद्देश्य मसीह के जैसा कार्य करना और विश्वासियों के समुदाय के तौर पर साथ में रहने के लिए सभी बातों में सहमत होना नहीं, पर सुसंगति रखना या तो अनुकूल होना है।

शुरुआत में विश्वास करनेवाले हरेक समुदाय इस उद्देश्य को पूरा करने के बहुत सारे कार्य करते थे। वे प्रार्थना करते थे, स्तुति-आराधना करते थे और वचनों का अभ्यास करते थे। चेले व्यक्तिगत रीति से और साथ में मिलकर यह सब कार्य करते हैं। में इन हरेक कार्यो के विषय में बात करना चाहता हूँ।

चेले प्रार्थना करते हैं

सामान्य अर्थ के तौर पर प्रार्थना तो परमेश्वर के साथ बातचीत है। पर उसमें एक विचार ऐसा भी है की क्या परमेश्वर पहले से नहीं जानते की हम क्या सोच रहे हैं? हाँ, वे जानते हैं। तो फिर क्यों प्रार्थना करनी चाहिए? परमेश्वर को माहिती देने के लिए प्रार्थना नहीं की जाती है। पर प्रार्थना के द्वारा हम परमेश्वर को (और दूसरे लोगों को) बताते हैं की हम परमेश्वर पर आधार रखते हैं। प्रार्थना करने के द्वारा हम इस बात को प्रगट करते हैं की हम खुद पर भरोसा नहीं रखते हैं, और खुद उपाय खोज नहीं सकते हैं। प्रार्थना तो परमेश्वर पर हमारा आधार और सिर्फ परमेश्वर में ही हमारी सलामती है इस बात को बताती है। इस रीति से देखें तो प्रार्थना परमेश्वर की भक्ति है। समूह में करनेवाली प्रार्थनाओं को भी यही अर्थ लागू होता है।

लूका 11:1 में यीशु के चेलों ने यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले और उसके चेलों के विषय में बात करते हुए यीशु को प्रश्न पूछा था की,

"...हे प्रभु, जैसे यूहन्ना ने अपने चेलों को प्रार्थना करना सिखाया वैसे ही हमें भी तू सीखा दे।" (लूका 11:1-4; मत्ती 6:9-15; लूका 18:9-14)। एक महत्व की बात देखना जरूरी है की यीशु ने अपने चेलों को प्रार्थना करते समय कौन से शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ऐसा नहीं कहा था। पर यीशु ने उनसे "इस रीति से प्रार्थना करो" ऐसा कहा था (मत्ती 6:9)। यीशु ने उन्हें नमूना दिया था। परमेश्वर के साथ बात करने के लिए हमें कोई सूत्रों की या खास शब्दों की जरूर नहीं। हम परमेश्वर के साथ सामान्य रीति से बात कर सकते हैं। दिखावा करने के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए (लूका 18:9-14)।

यीशु ने जो प्रार्थना सिखाई थी उसमें हम देखते हैं की जिस प्रार्थना की परमेश्वर को पहले से जानकारी नहीं है ऐसी कोई भी प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना तो परमेश्वर के ज्ञान में जो रिक्त स्थान है उसे भरने का कार्य नहीं है। परंतु, यीशु ने जो प्रार्थना सिखाई उस प्रार्थना में ("तेरा नाम पवित्र माना जाए") ये शब्द तो परमेश्वर की भक्ति और परमेश्वर के लिए सम्मान से भरपूर है, ("तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी पर भी हो") ये शब्द परमेश्वर के प्रति हमारी अधीनता को दर्शाते हैं, ("जिस प्रकार हम ने अपने अपराधियों को क्षमा किया है, वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर") ये शब्द माफी को दर्शाते हैं, और ("हमें परीक्षा में न ला, परन्तु बुराई से बचा") ये शब्द परीक्षा और बुराई से छुटकारे को दर्शाते हैं। प्रार्थना की रचना तो हमारे जीवनों पर परमेश्वर की प्रभुता का अंगीकार करने के लिए और परमेश्वर पर आधार रखने के हमारे रवैये का स्वीकार करने के लिए करनी है।

बाइबल व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थनाओं से भरा है। अगर आप उसे पढ़ें तो आप सीखेंगे की प्रार्थना के द्वारा हम हमारी भावनाओं को परमेश्वर के आगे उंडेल सकते हैं। जब हम कोई कार्य करते हैं तब परमेश्वर उसके विषय में सीखते नहीं है। पर हम परमेश्वर के प्रति समर्पित होने के विषय में, परमेश्वर अच्छे हैं और श्रेष्ठ बातों को जानते हैं उस पर विश्वास करने के विषय में, और परमेश्वर की सहाय प्राप्त करने के लिए बिनती करने के विषय में सीखते हैं। यीशु ने कहा की परमेश्वर सच में उनकी इच्छा के विस्तृत संदर्भ के अनुसार उत्तर देंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो परमेश्वर के उत्तर हमेशा हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होंगे, पर परमेश्वर जानते हैं की हरेक मनुष्य के अनुभव और वर्तन में क्या चल रहा है, इसलिए वे अपनी बड़ी योजना के अनुसार कार्य करते हैं। परमेश्वर अनपेक्षित रीति से उत्तर दे सकते हैं।

बाइबल आधारित प्रार्थनाएँ स्व-केन्द्रित भी नहीं है। उसमें दूसरों के लिए आशीष का कारण बनने का और दूसरे लोगों पर परमेश्वर की दया हो उसके लिए बिनती करने के उद्देश्य का समावेश होता है। पौलूस ने जिन्हें पत्र लिखे उन लोगों का वो उसकी प्रार्थनाओं में समावेश करता है। प्रार्थना तो हंमेशा या तो अधिकांश तौर पर हमारी खुद की जरूरतों या मांग को ही नहीं बताती है।

यीशु ने बार बार प्रार्थना की थी। यीशु ने सर्वदा प्रार्थना करने के विषय में जो शिक्षा दी थी उसका अनुसरण किया था (कुलुस्सियों 4:2-6; लूका 18:1-8)। यीशु की सभी प्रार्थनाओं का उत्तर नहीं मिला था – और उन्हें यह स्वीकार भी था, क्योंकि वे तो परमेश्वर की इच्छा पूरी करने की मनसा रखते थे (मत्ती 26:36-46)। प्रार्थना के लिए इस महत्व की बात को याद रखना है। यीशु ने सिखाया की जब हम प्रार्थना करते हैं तब परमेश्वर उसका उत्तर देते हैं (लूका 11:9-13), पर हम ऐसा नहीं मान सकते की जब हम परमेश्वर को अधीन रहते हैं तो वे अपनी इच्छा के विरुद्ध हमारी इच्छा के अनुसार उत्तर देंगे (याकूब 4:3; 1 यूहन्ना 3:22; 5:14)।

चेले उपवास करते हैं

कई पाठक शायद उपावस से अनजान होंगे। सामान्य रीति से "उपवास" करने का अर्थ है की किसी बात से दूर *रहना।* भोजन न करने का "उपवास"। बाइबल में कई बार हम ऐसे उपवासों के विषय में पढ़ते हैं। यीशु ने उपवास किये थे (मत्ती 4:2)। यीशु ने ऐसी अपेक्षा नहीं रखी थी की उनके चेले भी उनके इस नमूने का अनुसरण करें, और इसलिए यीशु ने उन्हें चेतावनी दी थी की जब वे उपवास करे तब कपटियों के जैसे न हो (मत्ती 6:16-18)। उपवास अपने आप पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए किया जानेवाला कार्य नहीं है, पर परमेश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए किए जानेवाला कार्य है।

उपवास का अर्थ सिर्फ भोजन से दूर रहना नहीं है। आप जिन बातों से दूर रह सकते हो उन सभी का उपवास कर सकते हो। यीशु वजन कम करने की कोई रीत की सिफ़ारिश नहीं कर रहे थे। यीशु ने उपवास किए और जब उपवास के विषय में बात की तब उनके मन में अलग बात थी। बाइबल में उपवास के बहुत उदाहरण दिये गए हैं, पर वे उदाहरण कोई नियम नहीं है। पौलूस ने लिखा है की शादीशुदा युगल प्रार्थना में लागू रहने के लिए जातीय संबंध से दूर रहने का उपवास कर सकते हैं (1 कुरिन्थियों 7:1-5)।

क्यों ऐसा करना चाहिए? 1 कुरिंथियों 7:5 में पौलूस ने लिखा है की शादीशुदा व्यक्ति एक दूसरे की सम्मति से थोड़े समय के लिए जातीय संबंध से दूर रहे, पर उसके साथ एक निर्देश भी देता है की, "एक दूसरे से अलग न रहो; परन्तु केवल कुछ समय तक आपस की सम्मति से की प्रार्थना के लिए अवकाश मिले..." उपवास तो प्रार्थना में ध्यान केन्द्रित करने के लिए उपयोगी होनेवाला आत्मिक कार्य है। यह कैसे उपयोगी होता है? शायद यह उदाहरण इस बात को समझने में उपयोगी होगा। अगर आप एक दिन के भोजन का उपवास रखने का निर्णय लेते हैं तो जब आपको भूख लगेगी तब आपको प्रार्थना करने का स्मरण होगा। उपवास तो आपको यह याद दिलानेवाला साधन है की आप ने प्रार्थना के निर्णय के साथ उपवास किया है।

उपवास के विषय में विचार करने की दूसरी रीत तो जो बात हमें प्रार्थना से दूर ले जाती है, या तो सामान्य रीति से परमेश्वर के साथ हमारी यात्रा से हमें चलित करती है, उन बातों को जानने की बिनती करनी है। इसका उत्तर शायद हमारा फोन, टी.वी. या कोई शौख हो सकता है। इन सभी बातों को अलग करके हम परमेश्वर और प्रार्थना पर मन लगा सकते हैं।

शुरुआत की कलिसिया के समुदायों ने सामूहिक रीति से प्रार्थना में ध्यान देने के लिए उपवास किए थे (प्रेरितों के काम 13:1-3; 14:23) । पुराने नियम में बताए गए सामूहिक तौर पर करनेवाले उपवास हमें पाप के सामूहिक दु:ख और पश्चाताप को दर्शाते हैं (यिर्मयाह 36;:6; योएल 2:12) ।

चेले भजन करते हैं

शायद आपको ऐसा लगेगा की भजन करना क्या है इसे समझना और उसकी व्याख्या करना सरल है । एक रीति से यह सही है और एक रीति से नहीं । कई बार हम कलिसिया में संगीत के साथ जो होता है उसे भजन समझते हैं । संगीत और गीत मसीही संगतियों का भाग होते हुए भी वो भजन नहीं है । खास कर बाइबल जो व्याख्या करता है उसके अनुसार तो नहीं (इफिसियों 5:19; कुलुस्सियों 3:16) । हमारी संस्कृति की दूसरी एक मनसा तो भजन का विचार आंतरिक रहस्यमय भावना के अनुभव के विषय में है । वो भी भजन नहीं । हम ऐसे कई शास्त्रभागों के विषय में विचार कर सकते है, पर मैं आपको ऐसे दो शास्त्रभाग बताना चाहता हूँ:

> इसलिए हे भाइयों, मैं तुम से परमेश्वर की दया स्मरण दिला कर विनती करता हूँ की अपने शरीरों को जीवित, और पवित्र, और परमेश्वर को भावता हुआ बलिदान करके चढ़ाओ । यही तुम्हारी आत्मिक सेवा है । इस संसार के सद्रश न बनो, परन्तु तुम्हारे मन के नए हो जाने से तुम्हारा चाल-चलन भी बदलता जाए, जिससे तुम परमेश्वर की भली, और भावती, और सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम करते रहो । (रोमियों 12:1-2)
>
> यीशु ने सामरी स्त्री से कहा : परन्तु वह समय आता है, वरन अब भी है, जिसमें सच्चे भक्त पिता की आराधना आत्मा और सच्चाई से करेंगे, क्योंकि पिता अपने लिए ऐसे ही आराधकों को ढूँढता है । (यूहन्ना 4:23)

हमने पवित्र जीवन जीने के विषय में चर्चा करते समय प्रथम वचन के विषय में आगे बात की है । यीशु के जैसा जीवन जिओ । इस संसार के सद्रश न बनो, यानि की उसके मूल्यों और आत्मसंतोष के पिंछे न जाओ । यह भजन है । सच्चा भजन तो हृदय के साथ जुड़ी हुई बात है ।

दूसरा शास्त्रभाग एक खास कारण की वजह से दिलचस्प है । यीशु ने सामरी स्त्री से कहा की, परमेश्वर उनकी आराधना करनेवाले लोगों की इच्छा रखते हैं । इसलिए आराधना हमसे शुरू होनेवाली बात नहीं है । हमें तो परमेश्वर की भलाई और प्रेम का प्रत्युत्तर देने का निमंत्रण दिया गया है । यह हम कैसे और कहाँ करेंगे वो अलग हो सकता है । हम व्यक्तिगत रीति से या तो संगीत के साथ, कलिसिया में, या तो गिरजाघर के बहार भी भजन कर सकते हैं । हम सबके सामने या तो दूसरे विश्वासीओं के साथ संगति में भी यह कर सकते हैं ।

जब विश्वासी लोग संगति में इकठ्ठा होते हैं तब वे एक दूसरे से "प्रेम रखने का और अच्छे काम करने का प्रोत्साहन देते हैं (इब्रानियों 10:24-25) । दूसरे शब्दों में कहें तो वे एक दूसरे को आत्मिक भजन करने के लिए और यीशु का अनुसरण करने का प्रोत्साहन देते हैं । वे परमेश्वर की भलाई, प्रेम और उनके जीवन में परमेश्वर की उपस्थिती के लिए परमेश्वर की स्तुति करते हैं (प्रेरितों के काम 2:46-47; याकूब 5:130 । स्तुति आराधना में गीत गाने का और संगीत का समावेश होता है (मत्ती 26:30; इफिसियों 5:19; कुलुस्सियों 316), पर भूल से यह दोनों बातों को पवित्र जीवन के साथ जोड़ी गई हैं । "यहाँ तक की तुम उत्तम से उत्तम बातों को प्रिय जानो, और मसीह के दिन तक सच्चे बने रहो, और ठोकर न खाओ; और उस धार्मिकता के फल से जो यीशु मसीह के द्वारा होते हैं, भरपूर होते जाओ जिससे परमेश्वर की महिमा और स्तुति होती रहे । " (फिलिप्पियों 1:10-11)

हम इस वास्तविकता से मूँह नहीं मोड सकते, क्योंकि परमेश्वर के प्रति "हमारी आत्मिक आराधना (भक्ति या सेवा)" स्वभावगत रीति से हमारी जीवनशैली के साथ जुड़ी हुई है (रोमियों 12:1-2) । ये घर में या कलिसिया में प्राप्त होनेवाला 30 मिनिट का अनुभव नहीं है । पर ये तो परमेश्वर के द्वारा मार्गदर्शित होनेवाला जीवन है ।

चेले उनके पापों का अंगीकार करते हैं और माफी प्राप्त करते हैं

चेले जब यीशु के साथ उनकी यात्रा की शुरुआत करते हैं तब जो बातें होती हैं उन में से एक बात यह है की वे निष्फल होंगे। हम में से कोई भी यीशु के जैसा पापरहित नहीं है (2 कुरिन्थियों 5:12; 1 पतरस 2:21-22; 1 यूहन्ना 3:5), और हम ऐसा बनने की आशा भी नहीं रख सकते हैं। बाइबल इस बात में स्पष्ट है। चेलों ने पाप किया था (मरकुस 14:30; 68, 72)। उनमें से एक चेले यूहन्ना ने उसकी पत्री में लिखा है की :

> पर यदि जैसा वह ज्योति में है, वैसे ही हम भी ज्योति में चलें, तो एक दूसरे से सहभागिता रखते हैं, और उसके पुत्र यीशु का लहू हमें सब पापों से शुद्ध करता है। यदि हम कहें की हम में कुछ भी पाप नहीं, तो अपने आप को धोखा देते हैं, और हम में सत्य नहीं। यदि हम अपने पापों को मान लें, तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है। यदि हम कहें की हम ने पाप नहीं किया, तो उसे झूठा ठहराते हैं, और उसका वचन हम में नहीं है। (1 यूहन्ना 1:7-10)

वैसे यह जानना अद्‌भूत है की परमेश्वर के परिवार में हमारी सदस्यता हमारे कार्यों पर आधारित नहीं। हम अच्छे कार्य करके परमेश्वर को हमारा कर्जदार नहीं बना सकते हैं। हम जो कोई अच्छे कार्यों के विषय में विचार कर सकते हैं उन में से एक भी कार्य के द्वारा हमें अनन्त जीवन देने के लिए परमेश्वर हमारा कर्जदार नहीं। इसलिए हम में अच्छे कार्यों की कमी है वो बात परमेश्वर को हमसे दूर नहीं करती है। “जब हम पापी ही थे तब” परमेश्वर ने हम से प्रेम रखा (रोमियों 5:8)। इसलिए परिणामस्वरूप हमें यह याद रखना चाहिए की नैतिक परिपूर्णता की वजह से उद्धार प्राप्त नहीं किया जा सकता, और नैतिक अपूर्णता की वजह से उसे खोया भी नहीं जा सकता।

हम में जो अपूर्णता है उसे ध्यान में रखकर यीशु के सच्चे चेले को परमेश्वर की भलाई और प्रेम पर लक्ष्य रखना चाहिए। यूहन्ना की पत्री में बताए गए शास्त्रभाग को फिरसे पढ़ो। वो हमें स्पष्ट रीति से बताता है की हम निष्फल होंगे तब हमें क्या करना है, यानि की यीशु का अनुसरण करने में जो कमी है उसे दूर करनी है, या तो यीशु के जैसे बनने के लिए जो कार्य नहीं किए हैं उन कार्यों को करना है :“यदि हम अपने पापों को मान लें, तो वह हमारे पापों की क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है”।

जब हम पाप करते हैं या तो निष्फल होते हैं तब हमें इस बात को याद रखना ही है। अंगीकार का यही अर्थ है। हमें हमारे पापों को छिपाना नहीं है, उसके विषय में बहाने बनाने नहीं है, या गलत तर्क नहीं करने हैं। परमेश्वर चाहते हैं की हम हमारे पापों का अंगीकार करें। क्यों? क्योंकि हमें दीन होने की जरूरत है। हमें यह याद रखने की जरूरत है की उद्धार तो यीशु ने हमारे लिए जो कार्य किए हैं उसी की वजह से प्राप्त होता है, हम उसे कमा नहीं सकते हैं। अंगीकार तो यीशु की वजह से हम परमेश्वर की संतान हैं इस बात का स्वीकार करता है। हम इस बात में निश्चित हो सकते हैं की हमारा पाप हमें परमेश्वर से अलग नहीं करता है; हमारे पाप की वजह से हमें परमेश्वर के परिवार से निकाला नहीं जाएगा (रोमियों 8:31-39)। हमने सुसमाचार का अंगीकार किया उससे पहले परमेश्वर जानते हैं की हम भूल करते हैं। इससे परमेश्वर को कोई आश्चर्य नहीं होता है। इससे हमारे प्रति परमेश्वर की भावना बदलती नहीं है।

तो फिर स्वाभाविक तौर पर यह प्रश्न होता है की क्यों हमें हमारे पापों की चिंता करनी चाहिए? नए नियम के चेलों ने लोगों में इस मनसा को देखा था। पौलूस ने रोम के मसीही लोगों को जो पत्री लिखी थी उसमें यह बात लिखी है :

> तो हम क्या कहें? क्या हम पाप करते रहें की अनुग्रह बहुत हो? कदापि नहीं! हम जब पाप के लिए मर गए तो फिर आगे को उसमें कैसे जीवन बिताएँ?...इसलिए पाप तुम्हारे नश्वर शरीर में राज्य न करे, की तुम उसकी लालसाओं के अधीन रहो; और न अपने अंगों को अधर्म के हथियार होने के लिए पाप को सौंपो, पर अपने आपको मरे हुओं में से जी उठा हुआ जानकार परमेश्वर को सौंपो, और अपने अंगों को धर्म के हथियार होने के लिए परमेश्वर को सौंपो। तब तुम पर पाप की प्रभुता न होगी, क्योंकि तुम व्यवस्था के अधीन नहीं वरन अनुग्रह के अधीन हो। तो क्या हुआ? क्या हम इसलिए पाप करें कि हम व्यवस्था के अधीन नहीं वरन अनुग्रह के अधीन हैं? कदापि नहीं! क्या तुम नहीं जानते कि जिस कि आज्ञा मानने के लिए तुम अपने आप को दासों के समान सौंप देते हो उसी के दास हो: चाहे पाप के, जिसका अंत मृत्यु है, चाहे आज्ञाकारिता के, जिसका अंत धार्मिकता है?

इस बात पर ध्यान दें कि बाइबल ऐसा नहीं कहता है कि, "अगर आप पाप करेंगे तो परमेश्वर आपसे प्रेम नहीं रखेंगे"! पर बाइबल आत्म-विनाश के बंधन में वापिस न जाने के विषय में बात करता है। इसलिए एक रीति से ऐसा कह सकते हैं कि हम पाप करेंगे नहीं, पर दूसरी रीति से ऐसा भी कह सकते हैं कि हमें पाप को नजरअंदाज करना चाहिए। पौलूस इस संघर्ष को अच्छी रीति से जानता था (रोमियों 8:7-25), फिर भी वो यीशु का द्रढ अनुयायी था। नया नियम हमारे मन में होनेवाले युद्ध के विषय में हमें सावध करता है। हमारे ह्रदय यीशु के पिंछे चलने कि इच्छा रखते हैं, पर हम में जो अपूर्णता है वो जीवन जीने कि हमारी शैली कि प्रतिष्ठा और आत्मसंतोष कि इच्छा रखती है (1 पतरस 2:11; याकूब 4:1)।

हम यीशु के पिंछे चलते हैं तब यह विचार अच्छा है कि, "खुले मन से परमेश्वर के साथ संबंध बनाए रखें"। मुख्य विचार तो यह है कि जब हम निष्फल होते हैं तब हमें तुरंत ही उसका अंगीकार करके परमेश्वर से प्राप्त होनेवाली माफी के लिए परमेश्वर का धन्यवाद करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि परमेश्वर ने हमारे पापों के लिए कितनी बड़ी कीमत चूकाई है। हम परमेश्वर के भाई और बहन बन सकें इसलिए "जब हम पापी ही थे तब" यीशु हमारे लिए मर गए, इसलिए हमें वफ़ादारीपूर्वक परमेश्वर के पिंछे चलना चाहिए और उनका धन्यवाद करना चाहिए।

चेले बाइबल का अध्ययन करते हैं

शुरुआत कि कलिसिया में चेले प्रेरितों कि शिक्षा को सुनते थे और वचनों का अध्ययन करते थे। पौलूस और दूसरे मिशनरियों – प्रेरितों ने भी जब दूसरे क्षेत्रों में कलिसियाओं कि शुरुआत कि तब ऐसा ही किया था (प्रेरितों के काम 2:42; 4:2; 5:42; 17:10-11; 18:11; 20:20)। नए नियम के समय में बाइबल का अध्ययन करने की यह एक सामान्य रीत थी, क्योंकि अधिकांश लोगों के पास उनका खुद का बाइबल नहीं था। अधिकांश विश्वासी अनपढ़ थे। हम शिक्षित संस्कृति का भाग हैं, और हमारे पास हमारा खुद का बाइबल है, फिर भी हम समुदाय में रहकर बाइबल सीखने का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यीशु के पिंछे चलने के लिए परमेश्वर के वचनों को सीखने की जरूरत है। हम कैसे पाप के विषय में (यानि जो वर्तन और मनसा को छोड़ देना चाहिए उसके विषय में) और पवित्र आत्मा से भरपूर जीवन के विषय में, (यानि की हमें कैसा वर्तन करना चाहिए उसके विषय में) कैसे सीख सकते हैं? वचन हमे सिखाते हैं की "तुम पिछले चालचलन के पुराने मनुष्यत्व को जो भरमानेवाली अभिलाषाओं के अनुसार भ्रष्ट हो जाता है, उतार डालो और अपने मन के आत्मिक स्वभाव में नए बनते जाओ, और नए मनुष्यत्व को पहिन लो जो परमेश्वर के अनुरूप सत्य की धार्मिकता और पवित्रता में सृजा गया है।" (इफिसियों 4:22-24) जब हम सुसमाचार पर विश्वास करने के द्वारा परमेश्वर के परिवार का भाग बनते हैं तब पवित्र आत्मा हममें रहता है (1 कुरिंथियों 3:16-17; 6:19-20; 2 कुरिंथियों 6:16; इफिसियों 2::22) और फलदायी जीवन जीने के लिए उपयोगी होता है :

> और यदि तुम आत्मा के चलाए चलते हो तो व्यवस्था के अधीन न रहो। शरीर के काम तो प्रगट हैं, अर्थात व्यभिचार, गंदे काम, लुचपन, मूर्तिपूजा, टोना, बैर, झगड़ा, ईर्ष्या, क्रोध, विरोध, फूट, विधर्म, दाह, मटवालापन, लीलाक्रीड़ा और इनके जैसे और-और काम हैं, इनके विषय में मैं तुम से पहले से कह देता हूँ जैसा पहले कह भी चुका हूँ, की ऐसे ऐसे काम करनेवाले परमेश्वर के राज्य के वारिस न होंगे। पर आत्मा का फल प्रेम, आनंद, शान्ति, धीरज, कृपा, भलाई, विश्वास, नम्रता, और संयम हैं; ऐसे ऐसे कामों के विरोध में कोई भी व्यवस्था नहीं। और जो मसीह यीशु के हैं, उन्होंने शरीर को उसकी लालसाओं और अभिलाषाओं समेत क्रूस पर चढ़ा दिया है। (गलतियों 5:18-24)

चेले अपने जीवन में परमेश्वर के वचनो को और उन वचनों के अनुसार जीना सीखते हैं। यीशु ने भी परमेश्वर पिता की इच्छा पूरी करके बताया की वे परमेश्वर से प्रेम रखते हैं। चेलों का समुदाय तो परमेश्वर को प्रेम करने में उपयोगी होने में महत्व का भाग है। इस समुदाय में हम बहुत वर्षो से यीशु का अनुसरण करनेवाले परिपक्व विश्वासियों के संपर्क में आते हैं। जब उन्होंने "पुराना मनुष्यत्व उतार कर नया मनुष्यत्व पहन लिया" तब उनका जीवन कैसे बदल गया उसके विषय में सीखते हैं। जब हम यीशु जैसा बनने के मार्ग पर चलने में संघर्ष करते हैं तब उनके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त कर सकते हैं। वे हमें परमेश्वर के प्रेम और माफी को याद दिला सकते हैं। पाप से मूँह

मोड़कर अच्छे कार्य करने के लिए हरेक मसीही व्यक्ति संघर्ष करता है, इस बात को वे जानते हैं (1 यूहन्ना 1:5-10)। प्रेरितों ने भी पाप से मूँह मोड़कर अच्छे कार्य करने के लिए संघर्ष किया था (रोमियों 7:7-25; गलतियों 2:11-14)। जब हम यीशु जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं तब समुदाय का अर्थ है ज़िम्मेदारी, सहानुभूति और प्रोत्साहन।

चेले दु:ख उठाते हैं

यह मूल तत्व आपको आश्चर्य में डाल सकता है, पर नए नियम में यह स्पष्ट है। यीशु ने उनके चेलों से कहा था की :

> यदि संसार तुम से बैर रखता है, तो तुम जानते हो की उसने तुम से पहले मुह से बैर रखा। यदि तुम संसार के होते, तो संसार अपनों से प्रेम रखता; परंतु इस कारण की तुम संसार के नहीं, वरन मैं ने तुम्हें संसार में से चुन लिया है, इसी लिए संसार तुम से बैर रखता है। जो बात मैं ने तुम से कही थी, 'दास अपने स्वामी से बड़ा नहीं होता,' उसको याद रखो। यदि उन्होंने मुझे सताया, तो तुम्हें भी सताएंगे; यदि उन्होंने मेरी बात मानी, तो तुम्हारी भी मानेंगे। (यूहन्ना 15:18-20)

ऐसे समयों पर ही विश्वास की वफादारी की परख होती है। हमें हमारा जीवन कैसे जीना चाहिए उसके लिए ह्रदय के परिवर्तन के विषय में सीखना अलग बात है, और वास्तव में यीशु का अनुसरण करके उनके लिए दु:ख उठाना अलग बात है। प्रेरितों ने यीशु का अनुसरण करने के लिए दु:ख उठाया था (प्रेरितों के काम 5:41; 9:16; 21:13; 2 कुरिंथियों 11"22-29)। विश्वास को द्रढता से पकड़ के रखना नए नियम का विषय है (रोमियों 8:17-18; 2 कुरिंथियों 1:3-7; फिलिप्पियों 1:27-30; 1 पतरस 3:13-17)। मुख्य बारह चेलों में से एक चेले पतरस ने यीशु को दुख उठाते देखा था, और वो उसके विश्वास के लिए बंदीगृह में भी गया था (प्रेरितों के काम 12:1-19)। उसने सताव के लिए तितर-बितर हुए लोगों को लिखा है :

> क्योंकि यदि तुम ने अपराध करके घूँसे खाए और धीरज धरा, तो इस में क्या बड़ाई की बात है? पर यदि भला काम करके दुख उठाते हो और धीरज धरते हो, तो यह परमेश्वर को भाता है। और तुम इसी के लिए बुलाए भी गए हो, क्योंकि मसीह भी तुम्हारे लिए दु:ख उठाकर तुम्हें एक आदर्श दे गया है की तुम भी उसके पद-चिह्नों पर चलो। न तो उसने पाप किया और न उसके मुँह से छल की कोई बात निकली। वह गाली सुनकर गाली नहीं देता था, और दु:ख उठाकर किसी को भी धमकी नहीं देता था, पर अपने आप को सच्चे न्यायी के हाथ में सौंपता था। (1 पतरस 2:20-23)

दु:ख उठाने की बात हमें यह याद दिलाती है की सुसमाचार हमें हमारे जीवन में सरलता और विश्रांति का वचन नहीं देता है, पर आनेवाले जीवन में परमेश्वर के परिवार में अनन्त जीवन का वचन देता है। यह जगत हमारा वास्तविक घर नहीं है।

चेले और चेले बनाते हैं

चेले होने का सबसे महत्व का पहलू परमेश्वर से, हमारे पड़ोसी से और एक दूसरे से प्रेम करना है, पर चेला होने की सबसे महत्वपूर्ण बात तो दूसरे चेले बनाने की है। यीशु ने उनके स्वर्गारोहण से पहले उनके चेलों को यह आज्ञा दी थी। इसी वजह से इस आज्ञा को महान आदेश भी कहा जाता है :

> "यीशु ने उनके पास आकार कहा, "स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है। इसलिए तुम जाओ, सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ; और उन्हें पिता, और पुत्र, और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो, और उन्हें सब बातें जो मैं ने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ: और देखो, मैं जगत के अन्त तक सदा तुम्हारे संग हूँ। ' (मत्ती 28:18-20)

“सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ।” यह कार्य बाइबल की बात का एक बड़ा भाग है। देशों को गुलाम बनानेवाले अलौकिक प्रधानों का अधिकार उनके पास से ले लिया गया है। परमेश्वर इच्छा रखते हैं की उसमें बच्चे, यानि की उनके सहभागी और उनके पुत्र यीशु मसीह के चेले हरेक जगह पर सुसमाचार प्रगट करें।

परमेश्वर संभव हो उतने ज्यादा लोगों को अपने परिवार के सदस्य बनाना चाहते हैं। उन लोगों को सुसमाचार प्रगट करना, सुसमाचार के अनुसार जीवन जीना और उनको परमेश्वर के परिवार में लाना और वोही कार्य करना सिखाना ही हमारा कार्य है।

हम कैसे इस कार्य को करेंगे? हमने कैसे सुसमाचार पर विश्वास किया उस बात को उन्हें सिखाना है। यह बहुत सरल है।

प्रथम तो आप सुसमाचार पर विश्वास करके यीशु से द्वारा माफी प्राप्त करते हो उससे पहले आपका जीवन कैसा था उस बात को लोगों को बताना है। लोगों को बातें सुनना अच्छा लगता है, खास करके दूसरों की बातें सुनना अच्छा लगता है। क्यों? क्यों की हरेक व्यक्ति की बात में ऐसा कुछ होता है जो उसको सुननेवाले की बात के साथ जुड़ जाता है। जब आप किसी व्यक्ति को आपने सुसमाचार पर विश्वास किया उससे पहले की बात बताओगे तब उनके जीवन का कुछ विवरण लगभग एक जैसा होगा – या तो आपकी बात के साथ जुड़े ऐसे बहुत सारे विवरण उनके जीवन में भी होंगे।

दूसरा, उनको बताओ की क्यों सुसमाचार सुनकर और उस पर विश्वास करके आपके जीवन में नया मोड आया है। सामान्य तौर पर यह बात हमारे पापों की माफी के साथ जुड़ी हुई होती है। हम ने खुद के साथ या तो दूसरे लोगों के साथ गलत कार्य किए हैं फिर भी परमेश्वर हमसे प्रेम रखते हैं, और हमें उद्धार प्राप्त करने का प्रस्ताव देते हैं। उसके बाद जैसे परमेश्वर ने शुरुआत से इच्छा रखी थी वैसे ही हमें माफी प्राप्त हो और हम परमेश्वर के साथ अनन्त जीवन प्राप्त कर सकें इसलिए कैसे परमेश्वर ने यीशु मसीह को भेज दिया उस बात को बताओ।

तीसरा, सुसमाचार पर विश्वास करने से और माफी प्राप्त करने से आपके जीवन में कैसी असर हुई है यह बात लोगों को बताओ। उनसे कहो की परमेश्वर की माफी, प्रेम और अनन्त जीवन को जानना क्या है! उनसे कहो की उससे आप खुद कौन हो, और क्यों इस पृथ्वी पर हो इसके विषय में आपकी सोच कैसे बदल गई है। उनसे कहो की सुसमाचार का अंगीकार करने से आप कैसे बदल गए हो।

कुछ लोग रूपांतर पाये हुए हृदय का प्रमाण या सबूत मांगेंगे। यह स्वाभाविक है – और यीशु का अनुसरण करने का मौका है। यह तो पवित्र जीवन जीने के कारणो में से एक महत्वपूर्ण कारण है। यीशु ने लोगों से प्रेम किया और उनकी सेवा की। हरेक लोग दूसरे लोगों से प्रेम और विश्वसनीयता की इच्छा रखते हैं। यीशु लोगों को जैसा प्रतिभाव देते हैं वैसा प्रतिभाव देना जरूरी है। लोग ऐसे प्रतिभाव को देखेंगे। कोई व्यक्ति उनसे प्रेम रखता है या नहीं, उसको वे लोग जानेंगे। सब ने यीशु पर विश्वास किया नहीं था, इसलिए जब आप सुसमाचार देंगे और उनके साथ यीशु मसीह जैसा व्यवहार करोगे तब भी सब लोग विश्वास नहीं करेंगे, पर *कुछ ही लोग विश्वास करेंगे।*

महत्वपूर्ण नाम और शब्द (शब्दावली)

- इस सूची में जो शब्द दिये गए हैं उन शब्दों की जानकारी इस पुस्तक में विस्तार से बताई गई नहीं है। पुस्तक में जो घट्ट शब्द हैं उनका इस शब्दावली में समावेश किया गया है।

अब्राहम – जो लोग इस्राएली या तो यहूदी लोग के तौर पर जाने जाएँगे उनके पिता के तौर पर चूना गया परमेश्वर का सेवक।

प्रेरितों के काम – नए नियम में शुरुआत के मसीही लोगों का इतिहास बतानेवाला पुस्तक।

आदम और हव्वा – परमेश्वर ने बनाए हुए प्रथम दो मनुष्य (पुरुष और स्त्री)।

दूत – परमेश्वर की और यीशु में जो विश्वासी हैं उनकी सेवा करनेवाले अलौकिक व्यक्ति। मूल इब्रानी और यूनानी भाषा में बताए गए "दूत" शब्द का अनुवाद है "संदेशवाहक"। इसलिए "दूत" शब्द उसके कार्य का विवरण बताते हैं – यह शब्द परमेश्वर के राज्य में जो लोग हैं उनको संदेश पहोंचाने के कार्य को दर्शाता है। ज्यादा जानकारी के लिए शब्दावली के "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए गए शब्दों का सारांश" देखो।

प्रेरित – यूनानी शब्द का अर्थ हैं "भेजा गया व्यक्ति"। नए नियम में विविध प्रकार के प्रेरित हैं।

स्वर्गारोहण – पुनरुत्थान पाने के बाद यीशु स्वर्ग में चढ़ गए वो घटना

अश्शूरी लोग – उत्तरी मेसोपोटेमिया में इस्राएल के प्राचीन शत्रु

बाबेल – दक्षिण मेसोपोटेमिया का (वर्तमान समय का ईराक) प्राचीन बाबेल नगर

बाबेली – दक्षिण मेसोपोटेमिया में रहनेवाले इस्राएल के प्राचीन शत्रु

विश्वासी – सुसमाचार पर विश्वास करनेवाला और अंगीकार करनेवाला व्यक्ति

बाइबल – 66 प्राचीन पुस्तकों का संग्रह, परमेश्वर ने मनुष्यों को प्रेरणा देकर इन पवित्र पुस्तकों को लिखा है। प्रथम 39 पुस्तक पुराना नियम और उसके बाद के 27 पुस्तक नया नियम से जाने जाते हैं।

ख्रीस्त – "अभिषिक्त व्यक्ति" के लिए उपयोग किया जानेवाला यूनानी शब्द है, जिसे यीशु को दिये गए नाम "मसीह" से भी जाना जाता है।

वाचा - दो व्यक्तियों के साथ की गई सहमति। बाइबल में परमेश्वर ने मनुष्यों को वचन और आशीष देकर वाचा बाँधी है। वाचा में शर्त हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती।

क्रूस – यीशु को मार डालने की रीत। रोमी क्रूस एक लकड़े को सीधा खड़ा करके उस पर दूसरे एक लकड़े को आड़ा बांधकर बनाया जाता था। उस पर गुनहगारों को किले मारकर टांग दिया जाता था। नए नियम में "क्रूस" शब्द जहां पापों की माफी प्राप्त हुई और सुसमाचार पर विश्वास करनेवाले लोगों को उद्धार की सुरक्षा प्राप्त हुई उस स्थान को दर्शाता है।

दाऊद – इस्राएल का दूसरा राजा, जिसे परमेश्वर ने अनन्तकालिक राजवंश देने का वचन दिया था। उसकी पीढ़ी में से मसीह आए थे।

दुष्टता – बुराई और पाप से जुड़ा हुआ शब्द, वैसे यह शब्द दुष्ट विचारों को और वर्तन को भी बताता है।

शैतान – शैतान सर्प का दूसरा नाम है। ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो।

चेला – यह एक संज्ञा है और जो कोई व्यक्ति उसके जीवन में यीशु का अनुसरण करता है और यीशु की शिक्षा का अनुसरण करता है उस व्यक्ति को दर्शाता है। किसी को "चेला बनाने" के द्वारा उस व्यक्ति को यीशु का अनुसरण करना सिखाया जाता है।

सुसमाचार प्रचार – विविध रीति से शुभ संदेश का प्रसार करने का कार्य

निर्गमन – (1) बाइबल में दीया गया दूसरा पुस्तक (2) इस्राएल देश ने मिस्र की गुलामी में से छुटकारा पाया था उस घटना को दर्शानेवाला शब्द

दुष्ट – परमेश्वर जिसे नैतिक रूप से बुरा, नुकसान करनेवाला और खुद के लिए और परमेश्वर के सर्जन के लिए ठोकर दिलानेवाला कहते हैं ऐसा व्यक्ति।

विश्वास – भरोसा करनेवाला विश्वास (कोई व्यक्ति या वस्तु पर)

पतन – अदन वाटिका में आदम और हव्वा ने किए हुए पाप का परिणाम

माफी (पापों की) – जब परमेश्वर कोई व्यक्ति को उसके पापों की और परमेश्वर के विरुद्ध किए हुए कार्यों की क्षमा करते हैं तो उसे माफी कहा जाता है। जब परमेश्वर माफ करते हैं तब उसके दण्ड को भी दूर किया जाता है। उसके साथ जुड़े हुए विचार हैं – अनुग्रह, दया और उद्धार।

अदन वाटिका – परमेश्वर ने बनाए मूल जगत में जहां आदम और हव्वा रहते थे वो स्थान। परमेश्वर भी अदन वाटिका में उपस्थित थे ।

उत्पत्ति – बाइबल का प्रथम पुस्तक

अन्यजाति – जो कोई व्यक्ति मूल इस्राएल का भाग नहीं, यानि की – गैर यहूदी।

परमेश्वर – बाइबल में जहां यह शब्द एकवचन में और केपिटल अक्षरों में लिखा गया है, वहाँ सबका सर्जन करनेवाले अद्वितीय और जिसके साथ किसी की तुलना नहीं कर सकते ऐसा अलौकिक व्यक्ति, जो मनुष्य से प्रेम रखता है।

ईश्वरत्व – त्रिएकता; अद्वितीय परमेश्वर में जो तीन व्यक्ति हैं (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा)

सुसमाचार – यीशु मसीह के द्वारा प्राप्त होनेवाला उद्धार का संदेश

अनुग्रह – जब परमेश्वर हमारी योग्यता के बगैर हमें कोई आशीष देते हैं तो वो अनुग्रह या तो कृपा है; यानि परमेश्वर की भलाई।

महान आदेश – यीशु ने उनके चेलों को सब जातियों के लोगों को सुसमाचार देकर चेला बनाने का जो महत्वपूर्ण कार्य दिया था उसे महान आदेश कहते हैं।

इब्रानी – (1) "इस्राएली व्यक्ति" के लिए उपयोग में लिया जानेवाला शब्द (2) पुराना नियम जो मूल भाषा में लिखा गया था वो भाषा ।

पवित्र आत्मा – परमेश्वर का तत्व रखनेवाला परमेश्वर का आत्मा

इसहाक – सारा से जन्मा हुआ अब्राहम का पुत्र

इस्राएल – (1) अब्राहम के पोते का नया नाम। (2) पुराने नियम में अब्राहम और सारा के द्वारा जिस देश की शुरुआत हुई थी वो देश ।

इस्राएली – अब्राहम की पीढ़ी के लोग; इस्राएल देश के लोग।

याक़ूब – इसहाक का पुत्र, इस प्रकार से वो अब्राहम का पोता था। उसका नाम बदलकर "इस्राएल" रखा गया था।

यीशु – कुंवारी मरियम के द्वारा जन्मा हुआ परमेश्वर का पुत्र, पर वो सम्पूर्ण परमेश्वर है। पाप से मानवजात का उद्धार करने के लिए परमेश्वर खुद यीशु बनकर मनुष्यरूप में आए।

यहूदी – "इसराएली लोगों का" दूसरा नाम। अब्राहम के वंशज। प्राचीन समय में बंधुवाई में भेजे गए इस्राइल के दो कुलों को अन्यजातियों ने दिया गया नाम।

परमेश्वर का / मसीह का / यीशु का राज्य – मसीह के द्वारा इस पृथ्वी पर विश्वासियों के साथ परमेश्वर का राज्य। नया नियम बताता है की इस राज्य की शुरुआत हो चुकी है, पर इसकी अंतिम परिपूर्णता का इंतजार हो रहा है।

दया – जब परमेश्वर हम पर से उनके न्याय को दूर करते हैं

मसीह – "अभिषिक्त व्यक्ति" के लिए उपयोग किया जानेवाला इब्रानी भाषा का शब्द। यह शब्द दाऊद के वंश से आनेवाले और लोगों को उनके पापों से छुड़ाकर उद्धार देनेवाले अंतिम राजा को दर्शाता है। बाइबल की बात में यीशु को मसीह कहा जाता है। यह इब्रानी भाषा का यूनानी शब्द है, "ख्रीस्त"। इसलिए "यीशु ख्रीस्त" यानि की "यीशु मसीह" शब्दप्रयोग किया जाता है।

मूसा – मिस्र में इस्राएल की गुलामी के समय जन्मा एक इस्राएली व्यक्ति, परमेश्वर ने इस्राएल को गुलामी में से छुड़ाने के लिए और मार्गदर्शन देने के लिए उसको चुना था।

सिनै पर्वत – इस पर्वत पर परमेश्वर ने इस्राएलियों को मिस्र की गुलामी में से छुड़ाने के लिए मूसा को बुलाहट दी थी और उसके बाद इस्राएल को दस आज्ञाएँ दी थी।

नया नियम – पुराने नियम के बाद की 27 पुस्तकें। उसमें यीशु के जीवन और सेवा का, शुरुआत के मसीही इतिहास का और प्रथम सदी में मसिहियत के प्रसार के इतिहास का समावेश किया गया है।

नूह – जलप्रलय के समय जिस इन्सान को परमेश्वर ने धर्मी गिना था वो व्यक्ति। परमेश्वर ने नूह को उसका, उसके परिवार का और पशु-पक्षियों का बचाव करने के लिए एक बड़ा जहाज बनाने की आज्ञा दी थी।

पुराना नियम – बाइबल के प्रथम 39 पुस्तक। उसमें यीशु के जन्म से पहले हुई घटनाओं के कालक्रम का समावेश किया गया है।

पौलूस – अन्यजातियों में (यानि की – गैर यहूदियों के बीच में) सेवकाई करने के लिए चूना गया प्रेरित

पतरस – यीशु के बार चेलों में से एक

वाचा का देश – यह शब्द भौगोलिक रीति से इस्राएल को लागू होता है। परमेश्वर ने अब्राहम को इस देश को उसके संतानों को देने का वचन दिया था। इस्राएलियों ने उस देश पर अधिकार प्राप्त किया उससे पहले वो देश कनान देश से जाना जाता था।

अंधकार के हाकिम – परमेश्वर ने जगत और मानवीय परिवार के लिए की गई योजनाओं के विरोध करनेवाले हरेक अलौकिक व्यक्ति। ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो।

पुनरुत्थान – (1) मरने के बाद मृत्यु पर विजय पाने का कार्य; (2) नए नियम में, यीशु को क्रूस पर टांग कर मार डाला गया उसके बाद यीशु मृत्यु में से सजीवन हुए वो घटना, और नयी पृथ्वी में हरेक विश्वासी अनन्त जीवन पाने के लिए सजीवन होंगे यह घटना

उद्धार – जो कोई व्यक्ति उसके पापों के द्वारा परमेश्वर से जो अलगता हुई उससे छूटने के लिए सुसमाचार पर विश्वास करता है उस छुटकारे को उद्धार कहते हैं। उद्धार में सुसमाचार पर विश्वास करने से हमें हमारे पापों की क्षमा प्राप्त होती है। उद्धार विश्वासी को परमेश्वर के परिवार में पुन:स्थापित करता है।

सारा – अब्राहम की पत्नी, जिसे परमेश्वर ने अलौकिक रीति से गर्भवती होने के लिए शक्तिमान किया था

शैतान –अदन वाटिका में आदम और हव्वा को छलने वाले सर्प को दिया गया नाम । शैतान परमेश्वर ने सृजे हुए अलौकिक व्यक्तियों में से प्रथम ऐसा व्यक्ति था जिसने परमेश्वर से विद्रोह किया था । नए नियम में शैतान परमेश्वर का मुख्य शत्रु है । ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो ।

शाऊल – इस्राएल का प्रथम राजा

सर्प – अदन वाटिका में आदम और हव्वा का शत्रु । बाद में बाइबल में उसे दुष्ट या तो शैतान कहा गया है । ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो ।

पाप – परमेश्वर की धार्मिकता, नैतिकता और व्यवहार के मापदंडों के विरुद्ध किया जानेवाला विद्रोह का हरेक कार्य ।

सुलेमान – दाऊद के पुत्रों में से एक पुत्र । दाऊद की मृत्यु के बाद सुलेमान ने राज्य प्राप्त किया था ।

पुत्र – बाइबल में "पुत्र" शब्द त्रिएकता के दूसरे व्यक्ति को यानि की इन्सान बने हुए यीशु के दर्शाता है ।

परमेश्वर के पुत्र – पुराने नियम के अनुसार परमेश्वर की सेवा करनेवाले या तो परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले अलौकिक व्यक्ति । ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो ।

परमेश्वर का आत्मा – पवित्र आत्मा के लिए उपयोग में लिये जानेवाले दूसरे शब्द

आत्मिक युद्ध – पाप और शत्रु बने हुए अलौकिक व्यक्ति परमेश्वर के जिस महान आदेश का विरोध करते हैं उनके साथ किया जानेवाला संघर्ष । ज्यादा जानकारी के लिए "अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश" देखो ।

अलौकिक – स्वाभाविक (भौतिक) जगत और ब्रह्मांड के बाहर की बातों को बतानेवाला शब्द । "अलौकिक व्यक्ति" यह शब्द अशरीरी प्रकृति रखनेवाले व्यक्तियों को दर्शाते हैं ।

दस आज्ञाएँ – मिस्र की गुलामी में से निकालने के बाद इस्राएल को दिये गए शुरुआत के दस नियम ।

त्रिएकता – परमेश्वरत्व के तीन व्यक्ति – बाइबल का सिद्धांत है की परमेश्वर एक है, पर अनंतकाल से वे तीन व्यक्तियों के तौर पर अस्तित्व रखते हैं ।

अलौकिक बातों के बारेमें उपयोग में लिए जानेवाले शब्दों का सारांश

बाइबल हमें आत्मिक जगत में रहनेवाले व्यक्तियों के विषय में बताते हुए विविध शब्दों का प्रयोग करता है। कई बार मसीही संस्कृति में इन शब्दों को एकठ्ठा किया जाता है और उससे गड़बड़ी होती है। मैंने मेरे शिक्षात्मक पेशे में इन बातों के विषय में बहुत संशोधन किया है, और दूत, शैतान या अशुद्ध आत्माओं के विषय में दिलचस्पी रखनेवाले लोगों को मैंने नीचे बताए गए जो पुस्तक लिखे हैं उसे उसके क्रम के अनुसार पढ़ने की सिफ़ारिश करता हूँ :

- *अलौकिक – अद्रश्य जगत के बारे में बाइबल क्या सिखाता हे और क्यों ये महत्वपूर्ण हे*
- *The Unseen Realm: Recovering the Supernatural Worldview of the Bible*
- *Angels: What the Bible Really Says About God's Heavenly Host*
- *Demons: What the Bible Really Says About the Powers of Darkness*

प्रथम पुस्तक की रचना शिक्षात्मक तौर पर नहीं की गई है। उसके बाद जो तीन पुस्तक हैं उसे शिक्षात्मक रीति से (बहुत सारी पादटिका और जानकारी के साथ) लिखे गए हैं। इन पुस्तकों में इस विषय को समर्थन देनेवाले विध्वत्तापूर्ण स्रोतों में से बहुत सारी टिप्पणियाँ और संदर्भों को लिया गया है।

वे बाइबल की कहानी के विषय में हमारी प्रस्तुति में बताए गए अलौकिक जगत की समीक्षा या विवेचन करने के लिए उपयोगी होंगे।

बाइबल हमें सिखाता है की एक अद्रश्य जगत – यानि की आत्मिक व्यक्तियों का एक जगत है। ये व्यक्ति शारीरिक रूप धारण कर सकते हैं, पर उनका खुद का शरीर नहीं है। आत्मिक जगत "अलौकिक है" – यानि की भौतिक जगत से अलग स्वभाव या प्रकृति रखनेवाला एक जगत है।

परमेश्वर आत्मिक जगत के सभ्य हैं, पर उसके सरजनहार के तौर पर उसके मालिक भी हैं। सिर्फ परमेश्वर की ही ऐसे हैं जिनकी रचना नहीं की गई है। उनका अस्तित्व अनंतकाल से है। परमेश्वर ने जैसे इस जगत में हरेक प्राणियों की और मनुष्यों की रचना की है वैसे ही आत्मिक जगत में रहनेवाले सभी आत्मिक व्यक्तियों की भी रचना की है।

बाइबल आत्मिक जगत के सदस्यों के लिए अलग अलग शब्दप्रयोग करता है। उदाहरण के तौर पर, रोमियों 8:38; 1 पतरस 3:22) । मैंने इस पुस्तक में उन में से कुछ के विषय में बताया है। उनमें से कुछ शब्द तो उनके कार्यों को बताते हैं – यानि की वे आत्मिक व्यक्ति जो कार्य को करते हैं उस कार्य को दर्शाते हैं। "दूत" शब्द उसका एक उदाहरण है। इस शब्द का अर्थ है, "संदेशवाहक"। नए नियम की यूनानी-रोमी संस्कृति में "दूत" शब्द परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह न करनेवाले स्वर्गीय सैन्य के हरेक सदस्य के लिए उपयोग में लिया जाता था। प्राचीन जगत में "अशुद्ध आत्मा" शब्द के अलग अलग अर्थ थे, फिर भी परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले हरेक अलौकिक व्यक्ति के लिए "अशुद्ध आत्मा" शब्द उपयोग में लिया जाने लगा।
"परमेश्वर के पुत्र" यह शब्द पारिवारिक शब्द हैं, जो हमें याद दिलाता है की परमेश्वर आत्मिक व्यक्तियों के पिता (सरजनहार) हैं। वैसे उस शब्द का अर्थ उससे थोड़ा ज्यादा है। *Supernatural* (अलौकिक) और *The Unseen Realm* ये दो पुस्तकों में मैंने इन शब्दों के विषय में चर्चा की है। "परमेश्वर के पुत्र" ये शब्द तो परमेश्वर के उच्च कोटी के "कर्मचारियों" को दर्शाते हैं। यह शब्द तो प्राचीन जगत के राजा के संतानों को जिम्मेदारियों के साथ जो उच्च पदवियाँ प्राप्त होती थी उस भाषा से लिए गए शब्द हैं। परमेश्वर ने

बाबेल के आगे जो न्याय किया था तब "परमेश्वर के पुत्रों" को देशों के ऊपर अधिकार दिया गया था – यह कार्य तो जैसे दूत संदेशों को लेकर जाते हैं उससे ज्यादा महत्व का कार्य था ।

शुरुआत में आत्मिक जगत के हरेक सभ्य परमेश्वर से ईमानदार थे । पर परिस्थिति बदल गई । हमने इस पुस्तक में पढ़ा की परमेश्वर ने आत्मिक जगत की रचना की उसके बाद आत्मिक जगत के सदस्यों को उनके कुछ गुण दिये । उन गुणो में से एक गुण तो स्वतंत्र इच्छा थी । आत्मिक जगत के कुछ सदस्यों ने उनकी स्वतंत्र इच्छा का दुरुपयोग करके परमेश्वर की इच्छाओं और परमेश्वर के मानवीय परिवार के विरुद्ध विद्रोह किया । परमेश्वर के विरुद्ध और उनके लोगों के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले आत्मिक व्यक्ति सामूहिक रूप से "अंधकार के हाकिम" हैं । वैसे अपना एक मानवीय परिवार हो ऐसी परमेश्वर की इच्छा की बात में परमेश्वर के आत्मिक शत्रुओं को अलग रीति से बताया गया है ।

बाइबल तीन विद्रोह के विषय में वर्णन करता है । प्रथम विद्रोह तो अदन वाटिका में हुआ था । परमेश्वर के जगत के सदस्यों में से एक व्यक्ति मानवीय परिवार होने की परमेश्वर की इच्छा को नुकसान पहुंचाना चाहता था । बाइबल की बात में हम देखते हैं की वो व्यक्ति सर्प के रूप में हव्वा के पास आया और उससे छल किया । उसके बाद बाइबल में वो मूल विद्रोह करनेवाले व्यक्ति को "शैतान" (यानि विरोधी) और "दुष्ट (यानि निंदा करनेवाला) व्यक्ति ऐसा नाम दिया गया है ।

उसके बाद बाइबल की बात में हम आगे देखते हैं की परमेश्वर के स्वर्गीय पुत्रों ने भी विद्रोह किया । उन्होंने आत्मिक और भौतिक जगत की सीमारेखा को लांघ दिया । यहूदा की छोटी किताब उनके पापों का वर्णन करते बताती है की, "उन स्वर्गदूतों ने अपने पद को स्थिर न रखा । "अंत में कलिसिया की संस्कृति परमेश्वर के पुत्र जिन्होंने विद्रोह किया था उनकी दुष्टता को बताने के लिए उन्हें "पतित हुए स्वर्गदूत", या तो पवित्रता में से "पतित हुए" या तो "अशुद्ध" आत्मा कहती है । फिर भी पुराने नियम में उत्पत्ति 6:1-4 में "दूतों" या "अशुद्ध आत्मा" शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है ।

आखिर में बाबेल की मीनार के आगे जो घटना घटी उसके बाद जिनको देशों के ऊपर अधिकार दिया गया था वे "परमेश्वर के पुत्र" उनको जो कार्य सोंपा गया था उसमें भ्रष्ट हुए । भजनसंहिता 82 में उनके न्याय का वर्णन किया गया है । यह क्षेत्रीय प्रधान तो दानिएल ने उसके पुस्तक के 10 वे अध्याय में और पौलूस ने इफिसियों की पत्री 6:11-12 में बताए गए प्रधान, अधिकारी, हाकिम और दुष्टता की आत्मिक सेना का मूल है । यह सब शब्द भौगोलिक अधिकार के विषय में बताते हैं, और इससे बाइबल की कहानी में बताई गई बाबेल की घटना के बाद जो परिस्थिति पैदा हुई थी उसका वर्णन करते हैं ।